सिद्धयोग

संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 37; अंक : 6
सितम्बर 2004

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई 283202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) रामलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 9
- हिमालय के अमर महायोगी – पूर्णचन्द्र पन्त 12
- श्री गुरुदेव के संस्कार भुगतान का अनुपम प्रसंग – केशव देव उपाध्याय 16
- गीतोक्त नियत कर्म के स्वरूप की समीक्षा – डॉ० विजयसिंह ... 20
- कर्मयोग और कर्मभोग –रामेश्वर खण्डेलवाल 24
- ओम –जनक कुलश्रेष्ठ 27
- षट सम्पत्ति –रामेश्वर खण्डेलवाल 30
- महाप्रसाद की महिमा–२ – राजेश कुमार श्रीवास्तव 33
- स्वास्थ्य चर्चा 40

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 37 अंक 6	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यांमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	सितम्बर 2004

सूर्यस्यावृतमनवावर्ते
दक्षिणामन्वावृतम्।
सा मे द्रविणं यच्छतु
सा मे ब्राह्मणवर्चसम्।।

—अथर्ववेद

मैं नियम, रीति और व्रत के मामले में सूर्य के समान आचरण करूँ, वृद्धि और तेज के मार्ग का अनुकरण करूँ तथा सूर्य के मार्ग का अनुकरण मुझे बल, धन, सम्पदा प्रदान करे और ऐसा आचरण मुझे सूर्य के समान तेज भी प्रदान करे।

अमृतकण

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।।

श्रीमद्भगवद्गीता ५/३

–हे अर्जुन ! जो पुरुष न किसी से द्वेष करता है और न किसी की आकांक्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है। क्योंकि राग–द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित पुरुष सुखपूर्वक संसार बंधन से मुक्त हो जाता है।

* * *

यो दुर्लभतरं प्राप्य मानुष्यं द्विषते नरः।
धर्मावमन्ता कामात्मा भवेत् स खलु वंच्यते।।

महा० शांति २९७/३४

जो मनुष्य परम दुर्लभ मानव जन्म को पाकर भी कामपरायण हो दूसरों से द्वेष करता और धर्म की अवहेलना करता रहता है, वह महान लाभ से वंचित रह जाता है।

* * *

यैरत्यक्तो ममताभावो लोभकोपौ निराकृतौ।
ते यान्ति परमं स्थानं कामक्रोधविवर्जिताः।।

–स्कन्द,मा.के. ३१/६६

जो लोग ममता, लोभ और क्रोध का त्याग कर चुके हैं, ऐसे काम–क्रोध रहित पुरुष ही परम पद को प्राप्त करते हैं।

* * *

अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये।
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः।।

दे.भा. १/१४/४

वेद शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी जिनका सांसारिक सुखों में राग (प्रेम) बना हुआ है, उनसे बढ़कर मूर्ख कोई नहीं। वे तो कुत्ते, घोड़े और सूअर जैसे ही हैं।

□ विशेष लेख

या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी

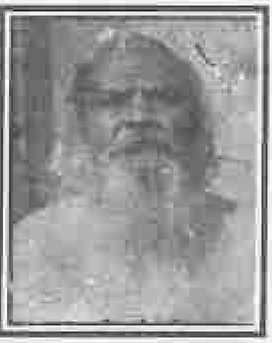

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने तुम्हें पहले भी व्याख्यानों में कई बार समझाया है—**'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु-मुपाघ्नत्'** ब्रह्मचर्य एवं तप से देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया है। केवल योगी व ब्रह्मचारी ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लिया करते हैं। यह ब्रह्मचर्य बल का बहुत बड़ा परिचय है। इसलिये भगवान कृष्ण की उक्ति के अन्दर **'श्रद्धया लभते ज्ञानम्' तत्परः संयतेन्द्रियः'** श्रद्धावान ज्ञान को प्राप्त होता है। यह कहकर श्रद्धा व संयम की महिमा कही गई है। श्रद्धा सतोगुण का उद्रेक होता है। योगदर्शन में आरम्भ में **'अथ योगानुशासनम्'** तथा इसके बाद **'योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः'** अर्थात् चित्तवृत्ति का निरोध योग है, यह बतलाया है **चित्तवृत्तीनाम् नितरां रोधः** अर्थात् **चित्तवृत्तियों** का नितराम् रोध ही योग कहलाता है। अपने भाष्य में भगवान व्यास देव जी ने चित्त की पाँच भूमियों का वर्णन किया है तथा यह बतलाया है कि योग का प्रारम्भ कहाँ से होता है ? पहले प्रकार का चित्त मूढ़ावस्था का होता है। घोड़ा, गधा आदि इस अवस्था के प्राणी होते हैं। उनके मन में दया धर्म नहीं होता, हिंसा और क्रोध रहा करता है। परपीड़ा में वह आनन्दित होते हैं। इन्हें आसुरि वृत्ति के लोग भी कहते हैं। इस अवस्था में चित्त को पूर्णरूप से तमोगुण ही आच्छादित कर लेता है। दूसरे प्रकार के प्राणी क्षिप्तावस्था के होते हैं। उनके रजोगुण प्रधान तथा सतोगुण और तमोगुण गौण रहा करते हैं। असंख्य प्राणी संसार में रहा करते हैं; किन्तु वे सभी सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इन प्रकृति संभव गुणों से युक्त रहा करते हैं। सतोगुण, रजोगुण आदि की भी मात्रायें होती हैं। कोई कम सतोगुणी है तो कोई ज्यादा। इसी प्रकार से रजोगुण और तमोगुण का भी मात्रा भेद से विभाजन होता चला जाता है। एक जैसा स्वभाव किसी का नहीं होता। क्षिप्तावस्था के प्राणियों का यह सिद्धान्त रहता है **'यावत् जीवेत् सुखम् जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। 'भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः'** अर्थात् जब तक मनुष्य जीवित रहे सुख से रहे, कर्जा उठाकर भी घी पीये। देह भस्म हो जायेगा फिर कहाँ से मिलेगा। ऐसी बातें रजोगुण वाले— प्रवृति शील लोगों के मन में रहा करती हैं वे इसी लोक को मानते हैं परलोक को नहीं मानते। ऐसे लोग अधर्म तथा अन्याय से भी पैसा कमाकर सुख भोगने में विश्वास रखते हैं। तीसरे प्रकार के प्राणी वे होते हैं जिनमें सतोगुण की प्रधानता आ जाती है। अन्य दो गुण गौण रहकर उनके चित्त में रहा करते हैं। इनको ऐसा समझना चाहिये

कि जैसे कोई महात्मा है, उसका स्वभाव बहुत ही दयालु है। परोपकारी है। किन्तु कभी न कभी क्रोध की झलक उनमें भी आ जाती है यह जो क्रोध की झलक आई वह रजोगुण के कारण आई। कभी–कभी प्रमाद आलस्य भी आ जाता है यह तमोगुण के कारण आ जाता है; किन्तु फिर भी उसमें सतोगुण प्रधान रहता है। ऐसे चित्त वाले प्राणियों को विक्षिप्तावस्था के प्राणी कहते हैं **'क्षिप्ताद् विशिष्टम् विक्षिप्तम्'** अर्थात जो क्षिप्त से विशिष्ट होते हैं ऐसे व्यक्ति धार्मिक होते हैं परलोक को मानते हैं, शिव को मानते हैं, किन्तु इन्हें कैसे प्राप्त कर सकते हैं इसका उन्हें कोई रास्ता मालूम नहीं होता। वे सोचा करते हैं—राम राम रटते रहो जब लग घट में प्राण। कबहुं तो दीन दयाल को भनक पड़ेगी कान।

वह मानता है— राम सर्व शक्तिमान है, कृष्ण व शिव सर्वशक्तिमान हैं उनके नाम रटने से वे मेरा भला कर देंगे। द्रोपदी ने भगवान कृष्ण को पुकारा

कृष्ण कृष्ण महा योगिन कृष्ण गोपी जन प्रियः।
कोरवार्णव निमग्नाम् मां किं न पश्यसि केशव।।

अर्थात् हे कृष्ण आप तो महायोगी हैं। फिर गोरवार्णव में डूबती हुई मुझ द्रोपदी को आप क्यों नहीं देख रहे हैं ? उनका महायोगिन कहने का संकेत यह था कि एक साधारण योगी भी अपने भक्तों को देख लेता है और रक्षा कर लेता है आप महायोगी हैं अतः मेरी रक्षा कीजिये। जब एक योगी एकाग्रावस्था में होता है संसार का प्राणी उसे चाहे कामना से याद करता है, क्रोध से याद करता है, प्रेम से याद करता है अर्थात् जो उसके प्रति जैसी भावनायें रखकर याद करता है, वह उस योगी को मालूम हो जाता है। उन व्यक्तियों के मनोभाव के अनुसार ही उनका सूक्ष्म शरीर वैसे–वैसे ही हरकतें करता हुए दिखाई देता है। गीता में भगवान ने—

'या निशा सर्वभूतानाम् तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

की बात कही है इसका अर्थ यह है कि सांसारिक लोग बाहर की वस्तुयें देखते हैं, बाहर के शब्द सुनते हैं, बाहर का स्पर्श करते हैं, किन्तु भीतरी जगत का कोई उन्हें ज्ञान नहीं होता। इसके विपरीत मुनि लोग भीतरी दुनिया के अन्दर जागे हुये होते हैं। वे भीतर के नजारे देखा करते हैं, भीतर का स्पर्श पाते हैं, दिव्य रस लेते हैं, अपनी भीतरी दुनियाँ में ही मग्न रहते हैं, वे बाहर के नजारे नहीं देखा करते। उनके लिये बाहर की दुनियाँ का महत्व नहीं रहता।

किन्तु इसमें एक बात और भी है जो मैं तुम्हें कहना चाहता हूँ वह यह है कि अधिकांश समाधि लगाने वाले–भजन करने वाले रात्रि को ही भजन किया करते हैं। तीर्थ स्थानों में रहने वाले साधक चाहे हरिद्वार हो, ऋषिकेश हो, श्री वृन्दावन हो—साधु लोग रात में ही ज्यादा अभ्यास किया करते हैं। उसका खास कारण मैंने पहले बताया था कि जब एक योगी ध्यान में

बैठता है तो उस एकाग्रता में उसके सामने लोगों के चित्त आया करते हैं। उस योगी के प्रति यदि कोई प्यार की भावना करता है तो उसका सूक्ष्म शरीर प्यार का अभिनय करता हुआ दिखाई दे जाता है, यदि कोई क्रोध करता है तो क्रोध का अभिनय करता हुआ दिखाई दे जाता है, जिसका जैसा–जैसा भाव उस योगी के प्रति होता है, उसका वह भाव सूक्ष्म शरीर के द्वारा योगी के सामने व्यक्त हो जाया करता है। किन्तु जो लोग रात्रि में अभ्यास करते हैं उनके समाने ये बातें नहीं आतीं। इसका कारण केवल मात्र एक है कि उन सब के मन रात्रि में सुषुप्ति में चले जाते हैं **'अभाव प्रत्ययावलम्बनम् वृत्तिर्निद्रा'** निद्रा में ज्ञान का अभाव रहता है। निद्रा प्रगाढ़ होती है। उस समय मन दब जाता है; क्रियाशील नहीं रहता। जागृत अवस्था में हमारा मन क्रियाशील रहता। स्वप्न के अन्दर भी मन इस प्रकार के विचारों के अन्दर घूमता रहता है; किन्तु सुषुप्ति में मन दबा रहता है उस समय मन, में किसी प्रकार का भाव नहीं रहता। इसलिये योगी लोग रात्रि में ध्यानाभ्यास करते हैं। क्योंकि दुनियाँ वालों का मन उस समय अपने कारण में–सुषुप्ति में लय रहता है इसलिये लोगों की ओर से योगी को कोई विघ्न नहीं होता। अभ्यास में अन्तराय पैदा नहीं होता। लोगों की भावनायें आती रहे तो मन में अन्तराय आ जाते हैं। मुझे एक घटना याद आई। एक बार मैं और मेरे बड़े गुरु भाई ब्रह्म. गोपालानन्द जी श्री वृन्दावन गये। वहाँ हम दोनों रात्रि में केशी घाट चले गये। दोनों अभ्यास में बैठ गये। कुछ देर बाद उन्होंने मुझसे कहा–तुम सो जाओ। मैं ध्यान में बैठा रहूँगा। मैंने कहा– 'भाई जी ! आप सोयेंगे नहीं'। वे कहने लगे, नहीं। श्याम सुन्दर मुझ से कहते हैं कि यहाँ आकर भी तू सोयेगा ? इसलिये मैं नहीं सोऊँगा। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि यह जो सेवा कुञ्ज का दायरा इस समय देख रहे तो इससे एक–एक मील दूर तक सेवा कुञ्ज का ही दायरा है। सेवा कुञ्ज में दिव्य दृष्टि रहती है। इसलिए भाई गोपालानन्द जी ध्यान में ही बैठे रहे उन्हें दिव्य दर्शन व अनुभव होते रहे। भगवान का दिव्य तेज वहाँ व्याप्त है अतः वहाँ सांसारिक अन्तराय नहीं आया करते।

योगी जब समाधि में होता है उसकी सब वृत्तियाँ शान्त हो जाती है–**आपूर्यमाणम चल प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत। तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न काम कामी।।**

जिस प्रकार से सारे नदी नाले समुद्र में आकर विलीन हो जाते हैं। उसी प्रकार से योगी की समस्त वृत्तियाँ समाधि में लीन हो जाती हैं। स: शन्तिमाप्नोति न कामकामी' ऐसा योगी ही शान्ति को पाता है कामनाओं का चिन्तन करने वाला शान्ति नहीं पाता। हमने आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के चरणों में सूक्ष्म जगत की अनेक घटनायें देखीं हैं। अच्छे–अच्छे ध्यानी ध्यान में जो देखा करते थे वह सत्य ही होता था। एक बार मैं ऋषिकेश आश्रम में आनन्दकन्द प्रभु जी के

चरणों में बैठा हुआ था। हमारे अन्य कई गुरु भाई व योगिराज मुल्खराज जी महाराज आदि भी बैठे हुये थे। हमारे ध्यानी गुरु भाईयों ने कई दिन देखा कि कोई साधु आकर श्री प्रभु जी के चरणों में बार-बार प्रणाम कर रहा है। प्रभु जी उसे बार-बार आशीर्वाद दे रहे हैं। वास्तव में वह साधु आया नहीं था, सूक्ष्म से ही आया था। श्री प्रभु जी के चरणों में बैठे ध्यानियों ने ध्यान में देखने का प्रयत्न किया कि आखिर यह कौन साधु है जो नित्य प्रातः श्री प्रभु जी को प्रणाम करने आता है। उन्होंने ध्यान में देखा वह साधु ब्रह्मपुरी है और नित्य वहीं से श्री प्रभु जी को प्रणाम किया करता है।

देखो ! जिस समय हम लोग भी ध्यान में बैठते हैं तो श्री प्रभु जी को प्रणाम करते हैं। जंगलों में जो साधु रहते हैं, उनका गुरुदेव से सम्बन्ध होता है। वे वहीं से गुरुदेव को प्रणाम करते हैं। उनका प्रणाम गुरुदेव तक पहुँचता है। ध्यानियों ने उस ब्रह्मपुरी वाले साधु को देखा कि वह रोज श्री प्रभु जी को प्रणाम करता है और प्रभु जी उसकी सहायता करते हैं। इसी प्रकार एक और घटना मुझे याद आई। श्री प्रभु जी कश्मीर की यात्रा पर गये उनके साथ में श्री मुल्खराज जी महाराज तथा बहिन ऋषिदेवी आदि थी। वहाँ जम्मू के राजा हरिसिंह श्री प्रभु जी के भक्त थे। श्री प्रभु जी को उन्होंने कुछ दिन अपने यहाँ ठहराया। श्री प्रभुजी के ध्यानी बच्चे ध्यान में देखा करते थे कि एक पागल सा आदमी नित्य आकर श्री प्रभु जी के चरणों में विनीत भाव से प्रणाम करता है और प्रभु जी उसे प्यार से आशीर्वाद देते हैं। ध्यानी लोग एक दूसरे लड़के को भी देखा करते थे कि गन्द में लिबड़ा रहने वाला लड़का नित्य प्रभु जी के पास प्रणाम करने आता है और आशीर्वाद पाता है। एक दिन महाराज हरिसिंह ने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की कि महाराज ! आज कहीं घूमने चलें। श्री प्रभु जी ने कहा—आज हम तुम्हारा पागल खाना देखेंगे। महाराज को बहुत आश्चर्य हुआ कि पागल खाना भी कोई देखने की चीज है। किन्तु गुरुदेव की आज्ञानुसार पागलखाना पहुँच गये। वहाँ एक पागल बन्द था। वह प्रभु जी को देखते ही अन्दर कोठरी से ही बार-बार दण्डवत प्रणाम करने लगा। श्री मुल्खराज महाराज आदि देखने लगे कि यह वही लड़का है जो प्रभु जी को नित्य प्रणाम करने आता है और प्रभु जी खूब प्यार करते हैं। श्री प्रभु जी ने कहा—उसे छोड़ दो यह पागल नहीं है यह योगी है। प्रभु जी की आज्ञा से उसे छोड़ दिया गया। प्रभु जी ने कहा—इस पहाड़ी पर चढ़ जाओ एवं आगे की साधना में लग जाओ। वह तुरन्त पहाड़ी पर चढ़ गया। दूसरे दिन फिर इसी प्रकार से भ्रमण पर चल पड़े। उस दिन प्रभु जी ने कहा—आज गन्दे नाले की तरफ चलते हैं। श्री प्रभु जी ने मुल्खराज महाराज को आगे भेज दिया और कहा—ध्यान में देखना जिस-जिस के चेहरे पर तेज फैल रहा हो उनसे कहना। प्रभु जी आ रहे हैं ! श्री मुल्खराज जी आगे गये। उन्हें आगे एक लड़का मिला। गन्दे नाले में पड़ा हुआ था मल मूत्र उसके पास से बह रहा था। मक्खियाँ भिनक रही थीं। श्री मुल्खराज जी ने उसके तेज को देखकर कहा—प्रभु जी आ रहे हैं। उसने कहा—हाँ

आ रहे हैं। वह ही मुझे यहाँ डाल गये थे। वह ही उठायेंगे। श्री प्रभु जी वहाँ पहुँच गये। उनके पहुँचते ही वह लड़का खड़ा हो गया और तेजी से उनके चरणों में लिपट गया। श्री प्रभु जी ने उसे उठा लिया और उस गन्द से लिबड़े हुये को ही कण्ठ से लगा लिया। उसे आगे की साधना बता कर उसे भी सामने की पहाड़ी पर चले जाने की आज्ञा दे दी। एक बार हमारा योग प्रचार का कार्यक्रम जम्मू काश्मीर का था। वहाँ हमें नन्दलाल नाम का योगी मिला था। उसकी वहाँ काफी प्रसिद्धि थी। हमारा यह अनुमान है कि गन्दे नाले वाला वह लड़का ही नन्दलाल था। अस्तु।

मैं ये सब बातें इस बात को समझाने के लिये ही कह रहा हूँ कि जो चिन्तनशील साधक हैं वे गुरुदेव को नमन करते हैं उनका चिन्तन करते हैं उनका वह नमन व चिन्तन उन तक पहुँच जाता है। उस पागल ने पागल खाने में भी श्री प्रभु जी का चिन्तन रखा और गन्दे नाले वाले ने भी चिन्तन रखा। श्री प्रभु जी को ये सब बातें पता रही तभी तो वे पागलखाने गये, गन्दे नाले की ओर गये। ये सब उनके भीतरी ज्ञान का परिणाम है। मैं तुम्हें विक्षिप्तावस्था वाले प्राणियों के विषय में समझा रहा था। इसके पश्चात् चौथी श्रेणी के प्राणी एकाग्रावस्था के होते हैं। उनमें सतोगुण चमक उठता है। सतोगुण ही एकाग्रता का दाता होता है। एकाग्रता वाले मन में दया होती है, धर्म होता है, प्रेम एवं करुणा होती है। भगवान ने 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' कहा है। श्रद्धा चित्त की प्रसन्नता का नाम है। सतोगुण का उद्रेक श्रद्धा है। एकाग्रावस्था से पहले जो चिन्तन करते रहे, भजन करते रहे वह बाह्य वृत्ति को रखकर करते रहे। हम स्तुति करते हैं माला घुमाते हैं। रामाय नमः, शिवाय नमः का जप करते हैं किन्तु अनुभूति नहीं होती। **'अकरणात् करणं श्रेयः'** कुछ न करने से करना अच्छा है किन्तु मन के एकाग्र न होने से हमें विशेष उपलब्धि नहीं हो पाती। जब मन की एकाग्रता से सतोगुण चमक उठता है तो जिसका चिन्तन करते हैं उनके दर्शन हमें होने लगते हैं इसी को सम्प्रज्ञात योग कहते हैं। चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन तो असम्प्रज्ञात समाधि में ही होता है। व्युत्थान में अथवा समाधि से उठने के बाद जिसकी जैसी वृत्ति स्वभाव होता है, वह वैसे ही चेष्टा करता है। इसी को **'वृत्ति सारूप्यमितरत्र'** कहते हैं। गीता में भी भगवान ने **'सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि'** कहा है। अर्थात् ज्ञानवान भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है। इसीलिये सिद्ध योग लोग अपने शिष्यों पर शक्ति पात करके उन्हें हिमालय में ही बैठा लेते हैं उन्हें फिर संसार में आने नहीं देते। संसार में रहेंगे तो वर–शाप के झमेले में पड़ जायेंगे और फिर पतन हो जायेगा। दूसरे शिष्य वे होते हैं जो दुनियाँ में रहते हुये गुरुदेव के पूर्ण नियन्त्रण में रह लेते हैं। गुरुदेव उन्हें यम–नियम का पालन कराते हैं। गुरुदेव के थपेड़े खाकर वे अपनी वृत्ति को इतना शुद्ध बना लेते हैं कि उन्हें क्रोध आता ही नहीं। ऐसे साधक योगी के विषय में देखने वाले कहा करते हैं—**'चण्डालः किमयम् द्विजातिरथवा शूद्रो किं तापसः'**। कोई कहता है यह चाण्डाल है कोई कहता है तपस्वी है। लोग अपनी–अपनी मति से अन्दाज लगाते हैं। किन्तु उस पर किसी का

प्रभाव नहीं पड़ता है। वह न किसी के वचन पर प्रसन्न होते हैं और न ही क्रुद्ध होते हैं। इस प्रसंग में मुझे एक घटना याद आई। एक बार श्री प्रभुजी ब्र. गोपालानन्द जी पर खुश हुये। कहने लगे। गुरु बाजार में चला जा वहाँ एक नंगा साधु है देख आ। ब्र. जी उसके पास गये और उसे देखा। उसके नाक मुंह से मल बह रहा था। अपने उपस्थेन्द्रिय को पकड़े हुये पेशाब करता हुआ सा चल रहा था उसका नाम रामू था। ब्र. जी उसे देखकर प्रभु जी के पास आ गये। प्रभु जी कहने लगे। देख आये उसे ? वे कहने लगे– 'हाँ प्रभु जी देख आया, वह तो बड़ी बुरी हालत में है'। श्री प्रभु जी कहने लगे क्या तुम्हें भी रामू की तरह बना दें। ब्र. गोपालानन्द जी कहने लगे–प्रभु जी वह तो बिल्कुल पागल है आप मुझे उस की तरह न बनायें। श्री प्रभु जी ने ब्र. गोपालानन्द जी को फिर भेजा। अच्छा अब तुम चौरस्ती अटारी चले जाओ वहाँ भी एक साधु है उसे देख आओ। ब्र. गोपालानन्द जी ने वहाँ जाकर उसे देखा। मल मूत्र की गली में पड़ा हुआ गन्द से लिबड़ा हुआ था। देखा भी नहीं जा रहा था। वे वापिस आ गये। श्री प्रभु जी ने कहा–देख आये ? क्या तुम्हें भी लल्लू की तरह बना दें ? गोपालानन्द जी ने उन्हें बाहरी दृष्टि से देखा था इसलिये कहने लगे–नहीं प्रभु जी ! मुझे आप ऐसा न बनायें। श्री प्रभु जी ने गोपालानन्द जी से कहा–अब तू ध्यान में बैठकर इनकी स्थिति देख। ब्रह्म. गोपालानन्द जी ने ध्यान में देखा कि वे दोनों अखण्ड मण्डलाकार तेज में झिलमिला रहे थे। बहुत ऊँची स्थिति थी उन दोनों की। कहने का तात्पर्य यह है कि जो योगी वृत्ति सारूप्य से पर उठ जाता है तो उसके लिये **शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शनः** की बात चरितार्थ हो जाती है। चाहे वह मलमूत्र में पड़ा रहे या अन्य किसी स्थिति में उनकी आत्मिक स्थिति बनी रहती है। इसलिये जिन शिष्यों को सद्गुरू शक्तिपात कर लेते हैं उन्हें फिर हिमालय से नीचे नहीं आने देते। उपाय प्रत्यय वाले योगी जो गुरुदेव के थपेड़े खाते हुये उनके नियन्त्रण में रह लेते हैं और न किसी को शाप देते हैं इस प्रकार के योगियों के लिये योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि जी ने एक बात का संकेत दिया है–

'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणाम् सुखदुः खपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। अर्थात् योगी को चाहिये कि वह सुखी व्यक्ति से मैत्री भाव रखे। दुःखी व्यक्ति के प्रति करुणा भाव रखे। पुण्यात्माओं को देखकर प्रसन्न रहे और पापी को देखकर उपेक्षा करे।

जो गुरुदेव के नियन्त्रण में रहकर अपनी कठोर वृत्तियों पर अधिकार पा लेता है वह पतन से परे हो जाता है। मैत्री आदि के भाव उस योगी के स्वभाव के अन्दर आ जाते हैं।

इसलिये गुरुदेव के नियन्त्रण में रहकर साधक को चाहिये कि अपनी वृत्तियों पर अधिकार करें और उत्तरोत्तर साधना में बढ़ता चला जाये। तभी वह योग के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है।

❋ ❋ ❋

अतीन्द्रिय सुख

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

सुख की परिभाषा यह है कि **"प्रतिक्षण आनन्द प्रदान करे"**। उस आनन्द में कोई कमी नहीं आवे। गीता में आनन्दकन्द श्री कृष्णचन्द्र जी ने सात्विक, राजस भेद से तीन प्रकार के सुखों का वर्णन किया है। सात्विक सुख वह है जो पहले तो विष के समान लगे किन्तु परिणाम में अमृत के समान सुखदायी हो। राजस सुख वह होता है जो विषय एवं इन्द्रियों के संयोग से हो तथा जो प्रथम तो सुखकारी भासता हो किन्तु परिणाम में रोग–शोकादि को देने वाला, विष के समान कष्टकारी हो वह राजस सुख कहलाता है। जो सुख आदि तथा अन्त दोनों में ही मोहकारी हो, निद्रा, आलस्य एवं प्रमाद को देने वाला हो वह सुख तामस सुख है।

मनुष्य के राजस, तामस वृत्तियाँ ही सुख–दुःख के कारण हैं। मूढ़ मनुष्यों की तामस व राजस वृत्ति होने के कारण शरीर तथा इससे सम्बन्धित वस्तुओं में ही वृत्ति रहती है। इसे ही वेदान्त की भाषा में देहाध्यास कहा जाता है। अर्थात् शरीर में ही आत्मबुद्धि रखकर सारा व्यवहार होना। इसका कारण है अविद्या। अविद्या के चार अंग हैं। जिनमें पहला है—अनित्य को नित्य समझ लेना। हमारे शरीर, पृथ्वी, चन्द्रमा आदि सभी अनित्य हैं किन्तु हम इन्हें नित्य मानकर इनमें आसक्ति रखते हैं। मनुष्य देह में लगे हुये दोष निरन्तर दुःखी करते रहते हैं। **जन्म-मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्।**

मनुष्य शरीर में लगे जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि रूप दोष का विवेकी व्यक्ति को सदा मनन करना चाहिये और इनके परिहार का उपाय ढूँढना चाहिये। मानव शरीर मल, मूत्र, रक्त कफादि अनेक मलिन वस्तुओं से युक्त है। निरन्तर इनका स्राव होता रहता है। प्राण छूट जाने पर इस शरीर को अस्पृश्य समझा जाता है। सगे सम्बन्धी इसके पास जाने में डरते हैं। इस शरीर को **'दुःखालयमशाश्वतम्'** करके भगवान ने इसके स्वरूप को दर्शा दिया है। यह शरीर कर्म भोग का आयतन कहा जाता है। इससे पूर्व कृत कर्मों का भी भुगतान होता है तथा नये–नये कर्म एवं उसके संस्कार बनते रहते हैं। प्रारब्ध के अनुसार ही मनुष्य को आयु मिलती है। आयु की अवधि के अवसान पर देहपात हो जाता है। संस्कार, स्पर्श, दर्शन एवं मोह से कर्म बनते हैं। यही आगे के लिये अपना प्रभाव छोड़ जाते हैं। जिन्हें संस्कार कहते हैं। इस शरीर से मोह की मनुष्य की मृत्यु का कारण है—

"मोह एवं महामृत्युर्मुमुक्षोर्वपुरादिषु"

अर्थात् इस शरीरादि अनित्य वस्तुओं में मोह ही मनुष्य का महामृत्यु है। कठोपनिषद् में एक मन्त्र आया है जिसका तात्पर्य है कि ब्रह्मा ने इन्द्रियों के द्वार बहिर्मुखी बनाये हैं इसी से हम भौतिक जगत को ही देखते हैं कोई–कोई धीर पुरुष आत्मतत्व का जिज्ञासु बनकर इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करके आत्मतत्व की खोज करता है वह सफल हो जाता है। हर जीव सुख की खोज में दौड़ रहा है किन्तु उसे स्थायी सुख मिल नहीं पाता। गीता में इस संदर्भ में भगवान् कहते हैं–**'नास्ति बुद्धिरयुक्त न चायुक्तस्य भावना'** अर्थात् जो योगी नहीं है उसकी सूक्ष्म बुद्धि नहीं होती हैं और अयुक्त की भावना भी नहीं होती है। अभावना वाले को शान्ति नहीं मिलती और अशान्त को सुख कहाँ से मिल सकेगा ?

क्लेश ही मनुष्य के दुःख के कारण हैं। अपवित्र वस्तु को पवित्र मानना दूसरी अविद्या है। हमारे शरीर मूलतः अपवित्र है ? किन्तु अज्ञान वश इसे पवित्र शुद्ध समझ कर आसक्त होते हैं। योगी अपने शरीर की अपवित्रता को समझ कर इससे घृणा करता है अथवा इसके दोषमय रूप को सदा ध्यान में रखता है। दुःख को सुख समझना अविद्या है। मनुष्य दुःख से निरन्तर पिसते हुये दुःख को ही सुख समझने लगता है। वह समझता है दुःख स्थायी व अवश्यम्भावी है जबकि योगी इसके दोषों को जानकर इससे मुक्त होने का प्रयत्न करता है। अनात्म वस्तु को ही आत्मा मान बैठता। चौथे प्रकार की अविद्या है। शरीर आत्मा नहीं है। आत्मा शरीर है किन्तु अज्ञान वश शरीर को ही आत्मा समझते हैं। आत्म ज्ञान के बिना अज्ञान नष्ट नहीं होता। आत्मज्ञान के लिये ही ध्यान योग की आवश्यकता है। ध्यान का सुख ही अन्तर्जगत का सुख है। उपनिषदों में आता है कि समाधि के द्वारा चित्त के निर्मल हो जाने पर योगी को जो सुख और शान्ति मिलती है उसका वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता है। वह स्वयं अन्तःकरण ग्राह्य है। स्वसंवेद्य है। गीता में इस सुख की महिमा बताते हुये कहते हैं–

"सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रिय"

अर्थात् ध्यान योग से योगी को जो अतीन्द्रिय अखण्ड सुख शान्ति मिलती है इसे प्राप्त कर फिर योगी बड़े से बड़े दुःख में भी विचलित नहीं होता। वह सुख बाह्य सुख साधनों से नहीं मिल सकता। आज समाज के पास पर्याप्त साधन हैं किन्तु अशान्ति पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ रही है। योग साधना में गुरु मन्त्र जाप की साधना देहाध्यास छुड़ाने का सर्वोत्तम उपाय है।

अजपा गायत्री की साधना आत्म दर्शन की साधना है। कुछ सद्यः परिणाम देने वाले मन्त्र हैं जो संकट के समय तुरन्त रक्षा करते हैं। एक बार गुरुदेव का एक शिष्य किसी केस में फँस गया था वह गुरुदेव के पास आया और अपनी समस्या से छुटकारा की प्रार्थना की। वह गुरुदेव का योग मार्ग में दीक्षित शिष्य था। गुरुदेव ने अजपा मन्त्र के जाप की आज्ञा दी थी। गुरुदेव ने उस संकट के समय उसे पञ्चाक्षरी जपने की आज्ञा दी। उसने पञ्चाक्षरी का जाप किया और

सफल मनोरथ हो गया। श्री गुरुदेव कहा करते थे कि पुण्य के क्षय हो जाने पर संकट आया करते हैं ऐसे में पञ्चाक्षरी जाप का तत्काल फल मिलता है।

प्राक्तन शुभ संस्कारों के कारण कई बार किसी गुरु से दीक्षित न होने पर भी ध्यानाभ्यास करने पर मन एकाग्र हो जाया करता है। ऐसी अवस्था में उन्हें शरीर का बोध नहीं रहता। मन की तरंगें शांत होने लगती हैं। मन ऐसी स्थिति में प्रवेश पा जाता है, जिसका जीवन में अनुभव कभी नहीं हुआ। कई बार भय का अनुभव होता है उन्हें लगता है कि कहीं उसका शरीर न छूट जाये। इसे ही योग में अभिनिवेश नाम का क्लेश कहते हैं। ध्यानाभ्यास में भय न हो इसीलिये सिद्धगुफा के सांनिध्य की आवश्यकता होती है। ध्यानाभ्यासी को ध्यान में बैठने से पूर्व यह संकल्प करके बैठना चाहिये कि मैं इतने समय बाद ध्यान से उठूँगा। ऐसा संकल्प करके बैठने से ठीक समय पर स्वयं ही व्युत्थान में आ जायेगा। महीनों की समाधि लगाने वाले भी इसी प्रकार खेचरी युक्त संकल्प से बैठते हैं और समय पर उठ जाते हैं।

योग में प्रवेश पाने के लिये साधक को कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना चाहिये। योगी के लिये कहा गया है—

योगस्य प्रथमं द्वारं वाङ्निरोधोऽपरिग्रहः।
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता।।

योगी को प्रथम अपनी वाणी पर संयम करना चाहिये। इससे दो लाभ हैं। एक तो वाणी पर संयम रखने से सत्य अहिंसा का स्वतः ही पालन होगा। दूसरा चित्त वृत्ति धारा प्रवाहवत् एक ध्येय में चलती रहेगी। योगी को अपरिग्रह के नियम का पालन दृढ़ता से करना चाहिये। अधिक वस्तुओं के संग्रह करने पर उसके रक्षण की चिन्ता करनी पड़ेगी तथा चित्त में आसक्ति भी बनी रहेगी। इसलिये साधक को अपरिग्रही होना चाहिये। परिग्रह योग साधक के लिये विघ्नरूप ही होता है। योग साधक को चित्त में अनेक प्रकार की आशायें भी नहीं रखनी चाहिये।

आशा दुःख की जननी है इसी से चित्त में विक्षेप रहता है। निरीहा भी योग साधक के लिये धारणीय व्रत है ? साधक को लौकिक इच्छा व संकल्प नहीं करने चाहिये। इससे शक्ति क्षीण होती है। योगी को निस्पृह रहना चाहिये। उसे एकान्त में रहने का अभ्यास होना चाहिये। गुरुदेव का शिष्य कभी अपने को अकेला महसूस नहीं करता वह कभी ऊबता नहीं है। कार्य से खाली होते ही जाप में मन रखना चाहिये। इससे वृत्ति स्वतः ही अन्तर्मुखी रहेगी। गीता में भगवान ने **'अरति जनसंसदि'**—विविक्त सेवी आदि शब्दों से साधक को एकान्त सेवन का उपदेश दिया है। साधक को भीड़भाड़ से दूर रहना चाहिये जनसमूह में रुचि नहीं रखनी चाहिये।

उपर्युक्त साधना को जीवन का अभिन्न अंग बना लेने पर योगी योग की सीढ़ियों पर चढ़ता जाता है और अन्ततोगत्वा अपने लक्ष्य को पा जाता है। तभी योगी को अतीन्द्रिय ऐकान्तिक, आत्यन्तिक एवं शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

❊ ❊ ❊

हिमालय के अमर महायोगी

पूर्णचन्द्र पन्त

आकाश मार्ग से प्रस्थान, नर्मदा परिक्रमा एवं ब्राह्मण बालक हरीराम पर कृपा

गुरु का बाग सवाई में भक्तों की भीड़ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। जिससे श्री प्रभु जी को एकान्त सेवन का अवसर नहीं मिलता था। अतः आप शीघ्रातिशीघ्र नेपाल (हिमालय) स्थित सिद्धाश्रम में अपने गुरुदेव के चरणारविन्दों में पहुँचना चाहते थे। किन्तु भक्त लोग आपको कहीं जाने नहीं देते थे। जब भी जाने की बात आती सत्संगी लोग हठपूर्वक आपको रोक देते थे। अन्त में एक दिन प्रभु जी ने उन लोगों से कहा—"अब हम यही गुफा के अन्दर बैठकर एकान्त में भजन करेंगे। तुम लोग गुफा के अन्दर किसी को मत आने देना। बाहर से ताला लगा दो।" यह सुनकर उन लोगों को बड़ा सन्तोष हुआ और उन्हें यह पूरा विश्वास हो गया कि अब बाबा जी हमें छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे। दोपहर के समय प्रभु जी गुफा के अन्दर चले गये और बाहर से ताला लगा दिया गया। भक्त लोग आते जाते रहे और शाम तक सत्संग चलता रहा। रात्रि को दो व्यक्ति गुफा के आगे लेटे रहे तथा शेष लोग अपने–अपने घरों को चले गये।

प्रातः ४ बजे के लगभग प्रभुजी ने एक अद्भुत योगलीला की। आप अणिमा सिद्धि द्वारा गुफा से बाहर निकल आये और आकाश मार्ग से वहाँ से चले गये। कुछ ही दूरी पर सूखा नामक एक प्रभु भक्त किसान अपने खेत में हल चला रहा था उसने एक अत्यन्त तेजोमय प्रकाश धारा के बीच किसी को आकाश में उड़ते देखा तो वह बड़ा भयभीत हो गया। उसने सोचा कि यह कोई भूत–प्रेत है। उसे इस प्रकार भयभीत देखकर प्रभुजी नीचे उतर आये और बोले—'अरे सूखा ! डरो मत, हम तुम्हारे गुफा वाले बाबा हैं, अब हम नेपाल हिमालय को जा रहे हैं। १२ वर्ष बाद फिर यहाँ आयेंगे और तुम लोगों से मिलेंगे। तुम हमारे जाने की बात किसी को बताना मत। ऐसा कहकर आप पुनः आकाश में पहुँच गये और दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान कर गये। आप नर्मदा तट पर पहुँचे। कुछ दिन वहाँ निवास किया और फिर नर्मदा की परिक्रमा करके पश्चिम दिशा की यात्रा आरम्भ की। इस बीच बहुत से सन्यासी और गृहस्थी साधक आपके भक्त बनकर नर्मदा परिक्रमा में तथा पश्चिम की इस यात्रा में आपके साथ सम्मिलित हो गये। जिनमें कृष्णानन्द और मुल्खराज प्रमुख थे। आगे चलकर हरिराम नामक एक ब्राह्मण बालक के साथ आपकी भेंट हुई उसकी भक्ति भावना, दानशीलता, शूरवीरता तथा न्यायप्रियता आदि गुणों से प्रसन्न होकर आपने अपने योगबल से उसे अजर अमर सिद्ध बना दिया और उसका नाम, हरिहरानन्द रख दिया उसे भी आपने यात्रा में अपने साथ रख लिया। इस यात्रा में आपने अपने योगबल से कई प्रेतग्रस्त स्थानों की शुद्धि की, कई दम्भी महात्माओं और भैरव सिद्ध अहंकारी साधुओं का मान मर्दन करके उन्हें सन्मार्ग में लगाया तथा हजारों जिज्ञासुओं को पवित्र योग मार्ग में दीक्षित किया।

रामरती का उद्धार एवं न्यायधीश और उसकी पत्नी रामादेवी को शरण में लेना

आप भक्त मंडली के साथ वनों को पार करते हुए बड़ी मस्ती के साथ यात्रा पर चले जा रहे थे। बिहार राज्य की बंगाल से लगती सीमा के समीपवर्ती जंगल को पार करके आप यमुनिया घाट पर रुक गये और गंगाजी में स्नान करके सन्ध्या वन्दना करने लगे, इतने में दो क्षत्रिय पिता–पुत्र एक पथभ्रष्ट युवती रामरती की हत्या करने के उद्‌देश्य से वहाँ आकर झाड़ियों की ओट में छिपकर हत्या की योजना बनाने लगे। उनमें एक उस युवती का पिता तथा दूसरा भाई था। उनकी कुछ बातें प्रभु जी के कान में पड़ गयी। आपने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा–तुम लोग बड़े परेशान नजर आ रहे हो। यदि तुम हमें सारी बात सत्य–सत्य बता दो तो हम तुम्हारी सारी परेशानी दूर कर देंगे। यह सुनकर पहले तो उन्होंने प्रभु जी पर विश्वास नहीं किया और सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि ये हमसे सारा भेद लेकर हमें फंसा दें। वे टाल–मटोल करते हुए वहाँ से भागने की चेष्टा करते रहे। प्रभुजी ने उनके मन की बात को जानकर पुनः कहा–देखो, हम महात्मा हैं, दुःखी जनों का दुःख दूर करने के लिये ही हम इधर–उधर विचरण कर रहे हैं। हम पर विश्वास करो। हम तुम्हारा भला ही करेंगे बुरा नहीं। प्रभु जी की प्रेमभरी मधुर वाणी को सुनकर लड़की के पिता ने आपको सारी बात बता दी और यह भी बता दिया कि–हम उस दुराचारिणी रामरती की आज अवश्य हत्या कर देंगे। प्रभुजी ने उसे समझाते हुए कहा–देखो ऐसा घोर पाप करना उचित नहीं है। इस बार तुम अपनी लड़की को क्षमा कर दो और उसे हमसे मिला दो। हम उसे समझा बुझा कर सही मार्ग पर ले आयेंगे। इतने में शराब के नशे में झूमती हुई रामरती वहाँ आ पहुँची। ज्यों ही वह आगे को जाने लगी तो प्रभु जी ने उसे रोक कर अपने पास बैठाया और बड़े प्यार से पूछा–बेटी ! तुम शराब क्यों पीती हो, व्यभिचार क्यों करती हो ? वह बोली–इसमें मुझे बड़ा आनन्द आता है। आनन्द पाने के लिये ही मैं यह सब करती हूँ। प्रभु जी ने कहा–यदि इससे बड़ा आनन्द तुम्हें मिल जाये तो क्या तुम ये काम छोड़ दोगी ?

वह बोली–यदि संसार में इससे बड़ा भी कोई आनन्द है और वह मुझे मिल जाये तो मैं सब काम छोड़ दूंगी।

प्रभु जी मुस्कराते हुए बोले–अच्छा देवी ! तुम्हें वह आनन्द अवश्य मिलेगा। यह कहकर आपने उसे पदमासन में बिठाकर उसे आँखे बन्द करने को कहा और उस पर तीव्र शक्तिपात दिया। जिससे उसकी उसी क्षण समाधि लग गई। प्रभु जी किसी महात्मा से मिलने चले गये। तीन दिन बाद वहाँ से लौटे तो देखा कि रामरती को आप जिस प्रकार बैठा गये थे वह उसी हालत में बैठी हुई है। प्रभु जी ने उसे आवाज दी किन्तु वह बोली नहीं, वह तो समाधि में लीन थी। तब आपने दूध मंगाकर दूध का कटोरा उसके मुँह से लगाया और उसे जोर–जोर से हिलाया तो वह धीरे–धीरे दूध पी गई, किन्तु उसने न तो आँखें खोली न कुछ बोली ही। प्रभु जी ने उसके पिता और भाई से कहा–यह अब कहीं नहीं जायेगी, इसी प्रकार यहीं बैठी रहेगी।

तुम इसकी देखरेख करना और इसे दूध पिलाते रहना। उसे देखने के लिए वहाँ काफी लोग एकत्रित हो गये थे। प्रभु जी ने उन सब से कहा–रामरती की खूब सेवा किया करो और इसे दूध पिलाया करो। जो इसे नित्यप्रति दूध पिलायेगा उसकी हर प्रकार की मनोकामना पूर्ण होगी। प्रभु जी के अमोघ आर्शीवाद से रामरती परमयोगिनी बन गई और देवी दुर्गा के रूप में पूजी जाने लगी। उसके भक्तों ने वहाँ बड़े–बड़े मन्दिर और धर्मशालाएँ बनवा दी। उसकी ख्याति दूर–दूर तक फैल गई। वह हमेशा समाधि में रहा करती थी। भोजन कुछ नहीं करती थी। दिन में एक दो बार दूध पी लिया करती थी।

इस प्रकार उस पथभ्रष्ट नारी का उद्धार करके प्रभुजी आगे को चले गये। यमुनिया घाट को पार कर बंगाल में प्रवेश करते ही आपने न्यायाधीश आशुतोष चटर्जी और उसकी पत्नी रामादेवी को अपनी शरण में लेकर अनुग्रहीत किया तथा रामादेवी के भक्ति भाव और योगनिष्ठा को देखकर आपने कृपा पूर्वक उसे समाधि की उच्चतम स्थिति में पहुँचा दिया। वहाँ से प्रभु जी ने अपनी शिष्य मण्डली के साथ उत्तर पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। जंगली भैंसे, शेर, हाथी, शूकर, रीछ आदि नर–पिशाचों और तान्त्रिकों का सामना करते हुए कई दिनों बाद आप ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर पहुँचे।

समुद्र के समान अगाध जल राशि वाली उस भयंकर नदी को किसी प्रकार नौका द्वारा पार करके आप कामरूप (मयगाव) पहुँचे और रात्रि को वहीं पर विश्राम किया। वहाँ के तान्त्रिक राजा रणसिंह द्वारा मारण प्रयोग किये जाने पर आपने अपने योगबल से उस प्रयोग को विफल कर दिया। जिससे वह राजा लज्जित होकर आपसे क्षमायाचना करने लगा और आपका भक्त बन गया। उस राजा के योगी गुरु के अहंकार को भी प्रभु जी ने इसी प्रकार चूर्ण कर दिया। अब आगे यात्रा में वही राजा आपका सहायक बन गया। इस प्रकार मार्ग की अनेकों बाधाओं का सामना करते हुए तथा भूखे–प्यासे आसाम के उन दुर्गम एवं निर्जन वनों को पार करते हुए कई दिनों पश्चात् आप अपनी मंडली के साथ गोहाटी पहुँचे।

योगसिद्धा अवधूतानी पर कृपा

गोहाटी नगर के फाँसी बाजार में आप किसी धर्मशाला में ठहर गये और कुछ दिन वहाँ निवास करके बहुत से संस्कारी जीवों का कल्याण किया। उन दिनों गुहाटी में एक योग सिद्धा अवधूतानी निवास करती थी। उसके गुरु परिपूर्ण योगी थे। उन्होंने उसे कृपापूर्वक योग साधना की विधि समझाई और अपने सामने अभ्यास में बैठाकर ध्यान की उच्चतम स्थिति प्रदान कर दी। उनकी कृपा से उसे योग की कई सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। अपनी भौतिक देह को त्यागने से पूर्व उन्होंने अवधूतानी को अपने पास बैठाकर बड़े प्यार से कहा–देवी ! अब हम इस संसार से जा रहे हैं हमारे पास जो कुछ था वह हमने तुम्हें दे दिया है। रही बात मोक्ष की, वह हमारे हाथ में नहीं है। मोक्ष देने की सामर्थ्य योगेश्वर प्रभुरामलाल जी महाराज जी के अन्दर है। उन्हीं को यह अधिकार मिला हुआ है। यदि तुम मोक्ष की इच्छुक हो या योग में किसी प्रकार की प्रगति

चाहती हो तो यहीं उनकी प्रतीक्षा करो, वे यहाँ आने वाले हैं। उनके यहाँ आने पर तुम सर्वतोभावेन उनकी शरण में चले जाना। उनकी करुण कृपा से तुम्हें मोक्ष भी मिल जायेगा। यह कहकर उन योगिराज ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। अवधूतानी अपना अधिकांश समय अपनी कुटिया में बैठकर ध्यानमग्न रहा करती थी। प्रभु जी के गोहाटी पहुँचने का ज्ञान उसे ध्यानावस्था में हो गया था और ध्यान में ही उसे आपके दर्शन भी वाह गये। उधर प्रभु जी ने एक लीला करते हुए वहाँ लोगों से पूछा–क्या यहाँ कोई योगी रहता है। उन्होंने कहा हाँ ! महाराज ! यहाँ एक अवधूतानी रहती है। उसके पास बड़ी–बड़ी सिद्धियाँ हैं। जो भी उसके दर्शन करने जाता है। उसकी मनोकामना पूर्ण होती है। दूर–दूर से लोग उसके दर्शनार्थ आया करते हैं।

प्रभुजी बोले–यदि ऐसी बात है तो हम भी उसके पास जायेंगे।

अगले दिन भक्तमंडली को साथ लेकर प्रभु जी अवधूतानी के आश्रम की ओर चल पड़े। उधर अवधूतानी को ध्यान में यह अनुभव हो गया था कि प्रभुजी इधर ही आ रहे हैं। वह आपकी अगुआई के लिये बड़ी तेजी से बाहर की ओर निकली। वह अभी कुछ ही दूर पहुँची थी कि– भक्तों की टोली के साथ प्रभु जी सामने से आते दिखाई दिये। वह शीघ्रता से आगे जाकर आपके चरणारविन्दों से लिपट गई। उसकी आँखों से प्रेमाश्रु बरस रहे थे। और आनन्दतिरेक से उसका गला रूंध गया था। वह हाथ जोड़कर नत मस्तक होकर आपके सामने खड़ी हो गई और बहुत देरे बाद कठिनता से केवल इतना बोल पायी–"प्रभो आपने दर्शन देकर मुझ अकिंचन को कृतार्थ कर दिया है। अब चलकर मेरी कुटिया को भी अपनी चरणरज से पवित्र करने की कृपा कीजिये"।

अवधूतानी के इस विनम्र भक्तिभाव को देखकर जहाँ प्रभुजी के साथ जाने वाले सत्संगी लोग आनन्दित हो रहे थे वहीं उस अवधूतानी की योग सामर्थ्य से परिचित नगरवासी इस दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित हो रहे थे।

प्रभु जी मन्द–मन्द मुस्कराते हुए उसके साथ चले गये। अवधूतानी ने अपने आश्रम में प्रभु जी का बड़ा स्वागत किया। उसने सर्वप्रथम आपको एक चौकी पर बैठाकर आपके चरण धोये, फिर तिलक किया, पुष्पमाला पहनाई, आरती की और फिर दूध, फल और मेवों का नैवेद्य भेंट किया। आज अवधूतानी के हर्ष का कोई पारावार नहीं था। वह अपने भाग्य को सराहती हुई मन ही मन विचार कर रही थी कि योगेश्वर श्री प्रभु जी को पाकर मैं तो धन्य हो गई हूँ। अब मेरे लिये कुछ भी करना और पाना शेष नहीं रहा है। प्रभु जी लगभग दो घंटे वहाँ रहे और सत्संग चलता रहा। वहाँ से प्रस्थान करने से पूर्व आपने अवधूतानी को योग के कई रहस्य बताये तथा उसे और उसके शिष्यों को गदगद हृदय से आशीर्वाद दिया। अवधूतानी ने श्री प्रभु जी एवं उनके भक्तसमुदाय को बड़े सम्मान के साथ विदा किया।

(क्रमशः)

श्री गुरुदेव के संस्कार भुगतान का अनुपम प्रसंग

केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

हमारे, आपके और प्राणी मात्र के भाग्य विधाता, आराध्यदेव श्री सद्‌गुरुदेव जी महाराज कब किसके साथ, किस जन्म का संस्कार भुगतान करते हैं, यह समझना उच्च श्रेणी के योग–साधकों के लिये भी बड़ा ही कठिन कार्य है। यह बात अलहदा है कि वे किसी साधक या शिष्य के आग्रह पर अपने संस्कार को भुगतान का रहस्य उसे स्पष्ट रूप से समझा देते हैं।

यह कृपा प्रसंग मई माह सन् उन्नीस सौ चौसठ का है, जब हमारे आराध्यदेव श्री सद्‌गुरुदेव जी महाराज, अपने योगेश्वर गुरुदेव श्री रामलाल जी महाराज जी की आज्ञाओं के पालनार्थ, योग प्रचार कार्यक्रम के जरिए मुक्ति का मार्ग जन–साधारण के लिए प्रशस्त करने योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवांई से हरियाणा के चण्डीगढ़ जिले में जा रहे थे। श्री गुरुदेव जी महाराज का चण्डीगढ़ का योग प्रचार कार्यक्रम हमारे परम आदरणीय गुरुभाई श्री रामचन्द्र कालिया जी के यहाँ आयोजित था। परम आदरणीय गुरुभाई श्री रामचन्द्र कालिया जी इस समय, इस नश्वर संसार में हैं या उनकी जीवन ज्योति, आराध्यदेव जी की अखण्ड ज्योति में समाहित हो गयी है, इसका स्पष्ट ज्ञान नहीं है, परन्तु एक बात तो अवश्य ही ज्ञात है कि भाई कालिया जी ने एकनिष्ठ, अनन्य गुरुभक्ति का अनुकरणीय उदाहरण हम लोगों के सामने प्रस्तुत किया है। इस रहस्य को और स्पष्ट करने के लिए उनका एक उदाहरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा।

सन् अस्सी के दशक में हमारे वाराणसी एवं मिर्जापुर मण्डल के चार–पाँच गुरुभाई चण्डीगढ़ देखने की नियत से जाना चाहते थे। कारण यह था कि अंग्रेजी में कहा जाता है कि "चण्डीगढ़ इज दी न्यूयार्क आफ इण्डिया" अर्थात् चण्डीगढ़ शहर भारत का न्यूयार्क है। यह शहर बहुत ही सुव्यवस्थित तरीके से बनाया एवं बसाया गया है। एवं प्रत्येक सड़क करीब बीस से चालीस मीटर तक चौड़ाई में बनाई गयी है। सफाई इतनी है कि गन्दगी का कहीं नामोंनिशान सड़क पर भी नहीं दिखायी देता। शायद इन्हीं मनोभावों को स्पष्ट रूप से समझने एवं दर्शन करने हमारे उपरोक्त भाई चण्डीगढ़ जाना चाहते थे। वे किसी उत्सव पर सिद्ध संचालित श्री सिद्धगुफा आश्रम पर आये थे एवं उत्सव समाप्ति के चौथे दिन प्रातःकाल उन लोगों ने श्री चरणों में प्रार्थना कि महाराज जी ! हम लोग चण्डीगढ़ देखने की नियत से जाना चाहते हैं एवं हमारा उस शहर में कोई परिचय नहीं है। आराध्यदेव जी ने अपने मुखारविन्द से कहा, "लल्ला, बैठ जाओ अभी बतलाते हैं।"

उसी समय आराध्यदेव जी ने अपने मुखारबिन्द से पास में बैठे एक भाई को कागज एवं कलम लाने का आदेश दिया। श्री गुरुदेव जी ने अपने कर कमलों से उस कागज पर इतना ही लिखा' चि० कालिया ! आशीर्वादः सन्तुः तुम्हारे भाई आ रहे हैं, इन्हें चण्डीगढ़ घुमा देना।"

इसके बाद उन्होंने अपने हस्ताक्षर कर दिये। पत्र के ऊपर कालिया जी का नाम और पता लिखकर एक गुरु भाई के हाथ में देते हुए कहा, "इस पते पर पहुँच जाना, यह पत्र दे देना।"

हमारे ये भाई श्री कालिया जी के आलीशान मकान पर पहुँच गये एवं कॉलबेल बजाये। उनका घरेलू नौकर निकला एवं हमारे भाई जी ने श्री गुरुदेव का वह पत्र उसे दे दिया। उसी दिन उनका लड़का विदेश से घर आ रहा था एवं उसे लेने उनको आधे घण्टे बाद एरोड्रम जाना था। वै एरोड्रम जाने की तैयारी कर रहे थे, उसी व्यस्तता में नौकर ने उनको वह पत्र सौंपा। पता श्री गुरुदेव की राइटिंग में देख, भाई श्री कालिया जी तत्काल बाहर आ गये एवं सभी आगन्तुक गुरुभाईयों के बिस्तर बन्द एवं अन्य सामान, अपने सभी पारिवारिक जनों के साथ सिर पर लाद–लादकर भीतर ले गये। वे इतने आह्लादित एवं उत्साहित थे कि ऐसा लगता था कि गुरुदेव ही अपने पार्षदगणों के साथ उनके घर पधारे हों। एरोड्रम पर अपनी गाड़ी से किसी अन्य को भेज दिया एवं स्वयं भाईयों की सेवा में रहे। अपने लाडले पुत्र के आने पर उसका समाचार पूछने से पहले ही आगन्तुक भाईयों से परिचय कराये एवं श्री गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि अनाथनाथ श्री गुरुदेव जी महाराज ने आप लोगों को हमारे पास भेजकर मुझे निहाल कर दिया है। ऐसी थी श्री कालिया जी की गुरुभक्ति एवं ऐसा था उनका अपने गुरु भाई–बहनों के प्रति स्नेह, प्यार एवं आदर। आइए अब उस घटना पर ध्यान दिया जाय जो इस कृपा प्रसंग का मुख्य विषय है।

चण्डीगढ़ के योग प्रचार कार्यक्रम में श्री प्रभु जी के साथ यात्रा करने वालों की संख्या तीन थी। एक थे हमारे परम आदरणीय श्री ज्ञानी बाबा जी, दूसरे थे आदरणीय गुरुभाई श्री किसन जी एवं एक अन्य गृहस्थ गुरुभाई जो आराध्यदेव जी के विशेष कृपापात्र थे, साथ यात्रा कर रहे थे। उस समय संचार माध्यमों की ऐसी व्यापक एवं विशाल व्यवस्था नहीं थी, जैसी आजकल के समय में है। उस समय संचार का मुख्य माध्यम रेडियो ही था एवं उसकी कीमत आम आदमियों की पहुँच से बाहर थी। अतः कुछ विशेष लोगों के पास ही रेडियो उपलब्ध था। कुछ धनी–मानी एवं ताजा खबरों की जानकारी रखने वाले ही रेडियो रेलगाड़ी या बसों में लेकर यात्रा करते थे। वह गाड़ी जिस पर श्री गुरुदेव जी महाराज अपने पार्षदगणों के साथ यात्रा कर रहे थे, जब अम्बाला रेलवे स्टेशन से करीब चार स्टेशन पहले थी एवं सुबह के पाँच बजे थे, किसी ने समाचार सुनने के लिए अपना रेडियो चालू किया तो, पहला समाचार यही था कि हृदयगति रुक जाने के कारण माननीय प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल का देहावसान हो गया। रेडियो का यह समाचार जंगल में आग की तरह पूरी गाड़ी में गूँज गया। सब लोग आपस में बात करने लगे की श्री नेहरू जी की मृत्यु हो गयी। श्री प्रभु जी भी इस समाचार से अछूते नहीं रहे एवं आदरणीय भाई श्री किसन जी ने उनसे प्रार्थना किया कि प्रधानमंत्री श्री नेहरू अब नहीं रहे। वह गाड़ी मेल ट्रेन थी एवं उसका अगला स्टापेज अम्बाला कैन्ट रेलवे स्टेशन ही था। आदरणीय भाई श्री किसन की बात सुनने के बाद श्री प्रभुजी ने कहा कि लल्ला किसन ! अब

हमें दिल्ली जाना पड़ेगा। भाई श्री किसन जी श्री प्रभुजी के मुँहलगे बच्चे थे, उन्होंने प्रार्थना किया कि प्रभुजी अभी सायंकाल ही तो दिल्ली से गाड़ी गुजरी है, उतरना था तो उसी समय वहाँ उतर गये होते। अब क्या जरूरत आन पड़ी कि फिर आप दिल्ली चलोगे ? श्री गुरुदेव भगवान ने कहा कि लल्ला ! एक जरूरी कार्य आ गया है, दिल्ली तो चलना ही पड़ेगा। भाई श्री किसन जी ने प्रार्थना किया कि प्रभु जी चण्डीगढ़ से वापस आते समय दिल्ली का कार्य निपटा देना। श्री गुरुदेव जी महाराज ने कहा कि नही लल्ला वह कार्य तो आज ही होगा। अतः हमें दिल्ली चलना ही पड़ेगा। भाई किसन जी ने कहा कि प्रभु जी, कौन सा ऐसा जरूरी कार्य आ गया है कि आपको दिल्ली चलना आवश्यक है। श्री प्रभु जी ने कहा कि लल्ला ! तुम साथ ही तो चल रहे हो, देख लेना कौन–सा आवश्यक कार्य है। कुछ समय पश्चात् अम्बाला स्टेशन पर गाड़ी रुकी एवं आराध्यदेव जी ने आदेश दिया "लल्ला ! जल्दी–जल्दी अपना सब सामान उतार लो।" उनकी आज्ञाओं का अक्षरशः पालन हुआ एवं सब सामान, श्री आराध्यदेव जी एवं उनके पार्षदगण रेलगाड़ी से उतर गये।

ट्रेन से उतरने के बाद आराध्यदेव जी ने भाई श्री किसन जी को रुपये दिये एवं कहा कि लल्ला ! दिल्ली स्टेशन का चार टिकट खरीद कर लाओ एवं जो मेल ट्रेन सबसे पहले आकर दिल्ली जायेगी, उसी का टिकट लेना। भाई श्री किसन जी दिल्ली का टिकट लेकर आये एवं श्री प्रभु जी अपने पार्षदगणों के साथ दिल्ली जाने वाली मेल ट्रेन में विराजमान हो गये। दिल्ली पहुँचने के बाद श्री प्रभु जी ने भाई श्री किसन जी को आदेश दिया कि लल्ला ! अपने गुरुभाई श्री ऋषिराम को फोन कर दो कि हम दिल्ली रेलवे स्टेशन पर है। वे अपनी गाड़ी लेकर स्टेशन पर आ जाय। उनका फोन मिलते ही ऋषिराज जी अपनी गाड़ी लेकर दिल्ली रेलवे स्टेशन पहुँच गये एवं वहाँ जाकर आराध्यदेव जी को सादर प्रणाम निवेदित किया एवं पार्षदगणों को सादर जयगुरुदेव किया तथा सबको साथ लेकर स्टेशन के बाहर खड़ी अपनी गाड़ी के पास आ गये एवं श्री प्रभु जी को गाड़ी में बैठाने के बाद, जब साथ चलने वाले पार्षदगढ़ भी उनकी गाड़ी में अच्छी प्रकार बैठ गये, तब वे श्री गुरुदेव का चरण स्पर्श कर गाड़ी चलाने की नियत से गाड़ी में बैठे। उन्होंने बैठने के बाद प्रार्थना किया कि प्रभुजी कहाँ चलना है। श्री मुख ने आदेश दिया "लल्ला हमें उस स्थान पर ले चलो, जहाँ नेहरू जी की चिता जल रही है। भाई श्री शर्मा जी ने प्रार्थना किया कि चिता तक पहुँच पाना बड़ा ही कष्ट साध्य कार्य है एवं उसमें सफलता मिलना भी सम्भव नहीं है। श्री गुरुदेव ने अपने मुखारविन्द से कहा, "लल्ला ! हमें चिता की लौ तथा धुआँ दिखायी दे रहा हो।" आदरणीय गुरुभाई ऋषिराम जी ने गाड़ी को फर्लांग की दूरी पर ले जाकर ऐसी ऊँची जगह पर खड़ी की, जहाँ से श्री नेहरू जी की चिता की लौ तथा धुआँ दिखलायी दे रहा था। गाड़ी जब उस स्थान पर रुकी तो श्री प्रभु जी ने परम आदरणीय श्री ज्ञानी बाबा जी से ऊँचाई वाले स्थान पर टाट की बोरी बिछवायी एवं उस पर कम्बल डलवाया तथा उसके बाद सभी पार्षदगणों को यह आदेश दिया कि जब तक मैं आसन

से न हटें, तुम लोग भी मंत्र जप करो, आपस में बातें बिल्कुल मत करना। इतना कहकर श्री गुरुदेव जी महाराज टाट और कम्बल के आसन पर अर्धपद्मासन लगाकर बैठ गये। भाई लोग भी उनके अर्धपद्मासन की मुद्रा में बैठने के बाद अपना मंत्र जप करना आरम्भ कर दिये।

पूरे तीन घण्टे बाद श्री प्रभु जी महाराज उठकर अपने आसन पर खड़े हुए एवं सात बार चिता की तरफ दोनों हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में उठाकर आशीर्वाद दिया। तदन्तर अपने पार्षदगणों से कहे कि चलो गाड़ी में बैठो। जब सब लोग गाड़ी में बैठ गये तो ऋषिराम जी ने प्रार्थना की, प्रभो ! अब कहाँ चलना है। आराध्यदेव महाराज जी ने श्री ऋषिराम जी से कहा, "लल्ला ! गाड़ी अब तुम अपने घर पर ले चलो। श्री ऋषिराम जी के घर पहुँचने पर आराध्यदेव जी ने स्नान किया एवं साथ गये सबको स्नान करने का आदेश दिया। स्नानादि से निवृत होने के बाद श्री ऋषिराम जी की धर्मपरायणा पत्नी ने कुछ ग्रहण करने की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा कि नहीं लल्ली ! आज अभी कुछ नहीं लेना है तथा श्री ऋषिराम जी से कहा कि लल्ला ! हम लोगों को रेलवे स्टेशन छोड़ दो। श्री ऋषिराम जी ने उन्हें दिल्ली रेलवे स्टेशन पर पहुँचाकर चण्डीगढ़ जाने वाली रेलगाड़ी में बैठाया एवं फिर चरण स्पर्श पर अपने घर आ गये। उधर श्री प्रभु जी गाड़ी से आगे की यात्रा आरम्भ किये।

दिल्ली स्टेशन से ज्योंहि गाड़ी चण्डीगढ़ की यात्रा के लिए चली भाई श्री किसन जी ने आराध्यदेव जी से हाथ जोड़कर प्रार्थना करके, यह जानना चाहा कि महाराज जी ! आपको प्रधानमंत्री से या राष्ट्रपति से क्या लेना– देना ? आप उनको आशीर्वाद देने क्यों गये थे, यह बताने की कृपा करें ? उन्होंने भाई श्री किसन जी की बातों को सुनकर मधुर मुस्कान के साथ कहा कि कोई बात नहीं लल्ला ! मन में ऐसा भाव आया एवं चला गया। हमारे आदरणीय भाई श्री किसन जी भी श्री प्रभु कृपाओं के अच्छे अनुभवी थे एवं वह जानते थे कि श्री गुरुदेव का कोई भी कार्य अकारण नहीं होता। श्री त्रिलोकीनाथ के प्रत्येक कर्म में कोई न कोई रहस्य अवश्य ही होता है। अतः उन्होंने इतनी बार प्रार्थना की कि अनाथनाथ को रहस्य बतलाना ही पड़ा।

लल्ला ! वैसे तो मुझे किसी से भी कुछ लेना–देना नहीं है। बात ऐसी है कि प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू एक जन्म में हमारे साथ लम्बे समय तक (कई वर्षों) साधना और तपस्या किये थे। हम पास–पास ही जंगलों में रहते थे एवं साधना तथा तपस्या भी तीव्र संवेग से किया करते थे। उस समय हमारी नेहरू जी के साथ दोस्ती बन गयी थी और हम लोगों ने एक–दूसरे की सहायता करने का वादा किया था। आज जब जवाहर लाल जी की आत्मा ने शरीर छोड़ा है तो उनका सूक्ष्म शरीर बार–बार आकर हमसे यही उलाहना दे रहा था कि हमने वादा नहीं निभाया। एक तो मेरे जवाहर लाल जी के साथ संस्कार बन गये थे और दूजे उनका सूक्ष्म शरीर बार–बार वादा निभाने का उलाहना दे रहा था। हमने वहाँ जाकर अपना वादा निभाया और जो संस्कार थे, उसका भुगतान भी कर दिया। साथ ही साथ श्री प्रभु जी से (हमारे आपके दादा गुरुदेव महाप्रभु जी रामलाल जी से) उनके कल्याण के लिए प्रार्थना भी कर दी है। अतः अब उनका अवश्य ही कल्याण हो जायेगा, ऐसा मेरा मत है।

❋ ❋ ❋

गीतोक्त नियत कर्म के स्वरूप की समीक्षा

डा० विजय सिंह

मानव मात्र श्वास–प्रश्वास द्वारा जीवन धारण किये हुये हैं। लोक ऐषणाओं, काया धर्म में व्यस्त हमारा प्राण निरन्तर अपव्यय को प्राप्त हो रहा है। संतों ने सचेत किया "हीरा जैसी स्वांसा बातों मे बीती जाय"। सिद्धों, सद्गुरु देव ने दीक्षा प्रक्रिया में श्वास–प्रश्वास द्वारा मंत्र–जप का विधान शिष्यों के कल्याण हेतु कृपा कर बताया है। संक्षेप में गीतोक्त नियत कर्म यही है। अध्याय चार में देखें–

सर्वाणीन्द्रिय कर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञान दीपते।।४।।२७

श्वास–प्रश्वास पर दृष्टि रखकर एवं जप रूपी यज्ञ–कर्म करते–करते अपने आप ऐन्द्रिक बाह्य संघात कमतर होता जाता है। प्राण कर्म करने पर चित्ताकाश, चिदाकाश का बोध उदय होता है। घटाकाश काया व्यूह में 'प्राण–मंथन' से मन स्थिर होकर सूक्ष्म काया व्यूह तथा कारण काया व्यूह का बोध कराता है। ऐसा होने पर इन्द्रियों की चेष्टाओं तथा प्राण सम्बन्ध का ज्ञान समझ में आने लगता है। ऐसी साधना द्वारा आगे चलकर मन के शांत होने पर इन्द्रियों का व्यापार के साथ–साथ प्राण भी कुम्भक रूप धारण कर शांत हो जाता है। क्रमशः ज्योति–नाद अर्न्तजगत को जीवन्त कर साधक को अध्यात्म अनुराग से पूरित करता है। इस प्रकार प्राण मंथन द्वारा आगे चलकर प्रज्ञा रूपी योगाग्नि जन्म–जन्मान्तरों के संचित कर्मों के संस्कार बीज को दग्ध करती है। जिससे चित्त अत्यन्त निर्मल हो उठता है। आत्मा का परम प्रकाशीय रूप–चैतन्यता का बोध साधक को उपलब्ध होता है।

उपरोक्त सांकेतिक कथन को और स्पष्ट करने हेतु जगद्गुरोः श्री कृष्ण जी आगे कहते हैं–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः।।४।।२९

श्वास–प्रश्वास पर मन्त्रार्थ के साथ सद्गुरोपदेशित इष्ट स्वरूप का चिंतन समय पाकर प्राण के सूक्ष्म रूप को प्रकट कर देता है। प्राण और अपान की शक्ति का बोध साधक को होने पर "सतु दीर्घकाल नैरन्तर्य" की साधना से स्वभावतः प्राण–अपान की गति निरुद्ध होकर सहज कुम्भक में परिणित होता है। अब चित्त में संकल्प–विकल्प का पूर्ण ह्रास होता है। आनन्द, प्रकाश, शांति सहज अहेतुक रूप से जाग्रत होगा। अतः सांस के आने, बाहर निकलने तथा

दोनों अवस्था को द्रष्टा रूप में पहले जाँचने का कार्य करना है। देखना है सांस बाहर से अन्दर लेते समय मन मंत्र युक्त हो कोई बाह्य संकल्प (विचार) उसके साथ अन्दर न जावे। इसी प्रकार सांस छोड़ते समय किसी विचार का (मन्त्र भाव के अतिरिक्त) स्फुरण न हो। ऐसा सध जाना शनैः शनैः मन को निरोध की ओर ले जाता है।

कर्म के प्रकार

योगीराजाधिराज श्री सद्गुरु भगवान कहते हैं कर्माशय में जन्म जन्मान्तरों के कर्म संस्कार जो संचित हैं वे संचित कर्म हैं। संचित कर्म चार प्रकार के हैं। शुक्ल कर्म (पुण्य के कर्म) जो दैवी सम्पदा के कारण हैं। कृष्ण कर्म (पाप कर्म) जो आसुरी सम्पदा के जनक हैं। कृष्ण–शुक्ल कर्म (पाप–पुण्य मिश्रित कर्म)। अकृष्ण–अशुक्ल कर्म (न पाप के न पुण्य के) ऐसा कर्म योगियों के हुआ करते हैं। पूर्ण चैतन्यः स्वरूप आत्मा में अवस्थित योगी द्वारा कोई भी किया गया कर्म पाप–पुण्य से परे होता है। दुर्वासा ऋषि द्वारा गोपियों द्वारा लाया खाद्य पदार्थ ग्रहण करने के पश्चात् अपने को निराहारी बताना। योगेश्वर कृष्ण के द्वारा गोपियों को अपने को ब्रह्मचारी अच्युत (जो आत्मबोध से कभी पतित होकर प्रकृति संग को ग्रहण नहीं करता। यह सभी उपरोक्त अशुक्ला, अकृष्ण कर्मों के उदाहरण हैं। प्रारब्ध कर्म अथवा उदार कर्म वे कर्मों के समूह हैं जो कर्माशय के भण्डार से लेकर इस जन्म में भुगतान होना है। उदार कर्म धनुष से छुटा हुआ तीर है। अतः उसे लक्ष्य भेद करना ही है। इसी प्रकार उदार कर्मों का भोग हर किसी को भोगना ही पड़ता है। यह और बात है कि इन भोगों का भोग सद्गुरू देव समर्थता पूर्वक अपने अनुरागी शिष्य का स्वयं अपने ऊपर लेकर भुगतान कर देवें (स्वयं अनेक बार श्री सद्गुरूदेव अपने अनुगत, आर्तगत शिष्यों का कठिन संस्कार अपने ऊपर लेकर भुगतान किया करते थे। श्री मानिक चन्द दलाल की कथा इस संदर्भ में दृष्टव्य है।

क्रियमाण कर्म वे कर्म हैं जो हम इस जन्म में आसक्ति अहंकार से युक्त होकर करते हैं। शुभ कर्मों के क्रियमाण कुछ इसी जन्म में फल देकर मुक्त हो जाते हैं। अन्यथा वे कर्माशय में संरक्षित होते हैं। यही बात अशुभ–कर्मों का है। तीव्र सम्वेग से किया कर्म चाहे शुभ हो अथवा अशुभ वे वर्तमान जन्म में ही मुक्त (फलीभूत) होते हैं।

नियत कर्म करने की आज्ञा

स्वयं नारायण सर्वकला सम्पन्न योगेश्वर श्री कृष्ण अर्जुन को निमित्त बनाकर सर्वकाल सम्भूत मानव को आज्ञा देते हुये कहते हैं–

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।८।।३

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।९।।३

अर्जुन तू नियत कर्म को कर वही सर्व कर्मजाल (संचित, क्रियमाण तथा उदार का विलोपन करेगा) को काटता है।

शरीर बोध रहते कोई निष्काम कर्ता हो ही कैसे सकता है। यहाँ शरीर बोधात्मा का तात्पर्य मूढ़ावस्था, क्षिप्ता अवस्था, विक्षिप्ता अवस्था ही नहीं अपितु एकाग्रावस्था सम्पन्न (सम्प्रज्ञात समाधि युक्त) जिनमें अभी अस्मिता भाव है। अहं जिनमें है, वे कर्म जाल से अशुभ या शुभ कर्मों द्वारा प्रताड़ित पुरस्कृत होते रहते हैं।

दूसरी बात का संकेत उस विज्ञान की ओर है जो सभी सिद्धगुरुदेव अपने शिष्यों को आदेश करते हुये कहते हैं—श्वास–प्रश्वास द्वारा मंत्र रूपी यज्ञ को निश्चित काल निर्धारित कर अवश्य किया करो। **''स्वल्पमस्य धर्मस्य त्रायतो महतो भयात''**। प्राणी का धर्म प्राण है। प्राण नहीं तो प्राणी नहीं, जड़ है मुर्दा है। पंच महाभूतों का ढेर है। प्राण रूपी नियत कर्म जो जप रूपी यज्ञ भी है। यज्ञानाम् जपोऽस्मी।। जप रूपी यज्ञ मैं ही हूँ। उसका थोड़ा–थोड़ा भी पालन महान से महान भय (मृत्यु) से मुक्त करने वाला है। यज्ञ की प्रक्रिया ही कर्म है। वह क्रिया कर्म है जिससे यज्ञ पूर्ण होता है। यज्ञ पूर्णता, मंत्र सिद्धी समानार्थक है। अर्थात् जिससे हम आत्म प्रतिष्ठित होते हैं। इसके अलावा जितने कर्म किये जाते हैं वे 'अन्यत्र लोकाऽयं कर्मबन्धनः'' लोक बन्धन (आवागमन) के कारण हैं। कर्म वह है **''मोक्ष्यसेऽशुभात्''** अशुभ से जो छुटकारा दिला दे। आत्म प्रतिष्ठा जो दिलावे वही नियत–कर्म है। **''कर्मणैव हि संसिद्धिम''** कर्म के द्वारा ही परम तत्व आत्मा को पाया जाता है। अतः सिद्ध सद्गुरुओं द्वारा निर्देशित विधानोक्त प्राण कर्म ही नियत–कर्म है। जिसे सदैव साधक को करते रहना चाहिये। गीता में आगे चलकर जगद्गुरो श्री कृष्ण जी द्वारा शक्ति पात पाकर अर्जुन को दिव्य दृष्टि मिला। जिसके फलःस्वरूप वह विश्वरूप दर्शन प्राप्त कर सके। अतः हम सभी नियत कर्म के महत्व को इसी जीवन में अपनाकर अर्न्तजगत बोध को जान लेवें।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।३५।३

स्वाभाविक श्वास–प्रश्वास के बोध से उत्पन्न प्राण–कर्म की क्षमता स्वधर्म है। निश्चित ही हर साधक की यह क्षमता भिन्न–भिन्न होगी। अतः प्रारम्भिक साधक को अपने से उच्च अनभूत साधक का नकल करने की जरूरत नहीं होना चाहिए। अपने सामर्थ अनुसार प्राण–कर्म (कोई–कोई इसी को क्रिया–योग भी कहते हैं) में प्रवृत्त होने से समयानुसार परम कल्याण को प्राप्त हो जावेंगे। अतः स्वधर्माचरण करते हुए यदि मृत्यु हो जाय तो अगले जन्म में जहाँ से

साधना छूटी थी पुनः वहीं से प्रारम्भ होगा। स्वधर्म क्या है ?

"न ब्राह्मणो न क्षत्रियः न वैश्यो न शूद्रः चिदानन्दरूपः शिवो केवलोऽहम"।

नियत–कर्म की साधना का ज्ञान सिद्ध सद्‌गुरू देव की महत अनुकम्पा से ही प्राप्त होता है। इस रहस्य को समय–समय पर सिद्ध संत, अवतार धरणी पर अवतरित हो जीवों को संमार्ग दिखा जाते हैं। इस अर्थ में ही जगद्‌गुरु श्री कृष्ण ने कहा है–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।३४।४

अर्जुन ! तू तत्वदर्शी महापुरुष के पास जाकर भली प्रकार शरणागत होकर उनकी सेवा करो। उनके प्रसन्न होने पर तुम साधना रहस्य के प्रति निष्कपट भाव से जिज्ञासा करो। वे तब तुझे साधना का मर्म (रहस्य) सिखायेंगे। जिसके करने पर तुम्हारा मोह नष्ट होगा। अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकोगे।

* * *

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादि संकुलः।
स्वकाले सत्यवत् भाति प्रबोधे असत्यवत् भवेत्।।

अर्थात् संसारित्व का अस्तित्व उतना ही है, जितना कि स्वप्नगत का। जिस प्रकार निद्रावरण के प्रभाव से स्वप्नावस्था में जाग्रत जगत मिथ्या हो जाता है और स्वप्न जगत सत्य भासित होता है। किन्तु निद्रावरण के हटते ही जाग्रत–जगत सत्य हो जाता है तथा स्वप्न जगत मिथ्या हो जाता है, ठीक इसी प्रकार अविद्या के आवरण में संसार सत्य भासित हो रहा है। और सर्वव्यापक परमात्मा कल्पना सा प्रतीत होता है।

कर्मयोग और कर्मभोग

रामेश्वर खण्डेलवाल
गंगापुर सिटी (राजस्थान)

मनुष्य शरीर में दो बातें है—(१) पुराने कर्मों का फल भोग, (२) नया पुरुषार्थ। दूसरी योनियों में केवल पुराने कर्मों का फलयोग है। पशुपक्षी कीट–पतंग यहाँ तक की देवता व ब्रह्म लोक तक की योनिया भोग योनिया है। पशु पक्षी, कीट–पतंगे आदि जो कुछ भी कर्म करते हैं, उनका वह कर्म भी फल योग में ही आता है। कारण उनके द्वारा किया जाने वाला कर्म उनके प्रारब्ध के अनुसार पहले से ही रचा हुआ है। उनके जीवन के अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थिति का जो कुछ भोग होता है वह भोग भी फल योग में है। परन्तु मनुष्य शरीर तो केवल नये पुरुषार्थ के लिये ही मिला है। जिससे यह अपना उद्धार कर ले।

इस मनुष्य शरीर में दो विभाग हैं—एक तो इसके सामने पुराने कर्मों के फल रूप में अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थिति आती है, और दूसरा यह नया पुरुषार्थ (नये कर्म) करता है। नये कर्मों के अनुसार ही इसके भविष्य का निर्माण होता है। नये कर्मों को करने की स्वतन्त्रता है। परन्तु पिछले कर्मों के फल रूप मिलने वाली अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थिति को बदलने में यह परतन्त्र है। परन्तु अनुकूल–प्रतिकूल रूप से प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करके मनुष्य उसको अपने उद्धार के लिये ही मिला है। इसलिये इसमें नया पुरुषार्थ भी उद्धार के लिये है और पुराने कर्मों के फलस्वरूप से प्राप्त परिस्थिति भी उद्धार के लिये है।

इसमें एक विशेष समझने की बात है इस मनुष्य जीवन में प्रारब्ध के अनुसार जो भी शुभ–अशुभ परिस्थिति आती है, उस परिस्थिति को मनुष्य सुखदायी या दुःखदायी तो मान सकता, पर वास्तव में देखा जाए तो उस परिस्थिति से सुखी या दुखी होना कर्मों का फल नहीं, प्रत्युत मूर्खता का फल है। कारण कि परिस्थिति बाहर से बनती है और सुखी–दुःखी होता है यह स्वयं उस परिस्थिति के साथ तादात्म्य करके ही यह सुख दुःख का अनुभव करता है। अगर मनुष्य उस परिस्थिति के साथ तादात्म्य न करके उसका सदुपयोग करे तो वही परिस्थिति उसका उद्धार करने का साधन बन जायेगी। सुखदायी परिस्थिति का सदुपयोग है—दूसरों की सेवा करना और दुःखदायी परिस्थिति का सदुपयोग है—सुखभोग की इच्छा का त्याग।

दुःखदायी परिस्थिति आने पर मनुष्य को कभी भी घबराना नहीं चाहिये, प्रत्युत यह विचार करना चाहिए कि हमने पहले सुख भोग की इच्छा से जो पाप किये हैं वे पाप अब दुःखदायी परिस्थिति के रूप में आकर नष्ट हो रहे हैं वे पाप कट रहे हैं उन पापों का प्रायश्चित हो रहा है। और दूसरा लाभ यह कि हमें चेतावनी मिलती है कि अब अपने सुख के लिये पाप करेंगे तो आगे हमें दुःखदायी परिस्थिति मिलेगी।

नुष्य के कर्म कैसे होने चाहिए–निष्काम कर्म होने चाहिए। सकाम कर्मों के द्वारा ही इसे जन्म लेना और मरना पड़ता है। सकाम कर्म बन्धन में बंधने वाला होता है। जन्म–मरण से छुटकारा पाना है बन्धन को तोड़ना है तो निष्काम कर्म करना है। **''फले सक्तो निबध्यते''** (गीता ५/१२) अगर तू फल की इच्छा रखकर कर्म करेगा तो बंध जायेगा। कारण कि फलेच्छा अर्थात् भोक्तृत्व पर ही कर्तत्व टिका हुआ है। बिना फल के कोई कर्म नहीं होता या करता। जब यह भाव मिट जाता है तो वो कर्म बन्धन में नहीं बंधता इसलिए गीता में कहा है **''मा फलेषु कदाचन''** फल में तेरा किंचित मात्र भी अधिकार नहीं है। अर्थात् फल की प्राप्ति में तेरी स्वतन्त्रता नहीं है। क्योंकि फल का विधान तो मेरे अधीन है। इसलिए मनुष्य को फल की इच्छा को त्याग कर कर्म करना चाहिए। 'फलेषु' पद में बहुवचन है इसका तात्पर्य है कि मनुष्य कर्म तो एक करता है लेकिन फल अनेक चाहता है। जैसे मैं अमुक कार्य कर रहा हूँ तो इससे मेरे को पुण्य हो जाए, मेरी कीर्ति हो अर्थात् मेरा नाम हो, लोग मेरा आदर करें आदि।

निष्काम होने के उपाय

(१) कामना पैदा करने से अभाव होता है, कामना की पूर्ति होने से परतन्त्रता और पूर्ति न होने से दुःख होता है। तथा कामना की पूर्ति होने से नई कामना की उत्पत्ति होती है। और सकाम भाव पूर्वक नये–नये कर्म करने की रुचि बढ़ती चली जाती है। ऐसा ठीक समझ लेने से निष्कामता स्वतः आ जाती है।

(२) कर्म नित्य नहीं है, क्योंकि उनका आरम्भ और अन्त होता है तथा उन कर्मों का फल भी नित्य नहीं होता क्योंकि उनका भी संयोग और वियोग होता है। परन्तु स्वयं नित्य है। अनित्य कर्म और कर्म फल से नित्य स्वरूप को कोई लाभ नहीं होता इतना समझ लेने पर भी निष्कामता आ जाती है। निष्काम होने से संसार का सम्बन्ध छूट जाता है और परमात्मतत्व की प्राप्ति हो जाती है।

''मा कर्मफल हेतु र्भूः''–तू कर्मफल का हेतू भी मत बन तात्पर्य है कि शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि कर्म–सामग्री के साथ अपनी किन्चमात्र भी ममता नहीं रखनी चाहिए क्योंकि इनमें ममता होने से मनुष्य कर्मफल का हेतु बन जाता है।

कर्म न करने में भी तेरी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। कारण कि कर्म न करने में आसक्ति होने पर आलस्य, प्रमाद आदि होंगे। कर्म फल में आसक्ति होने से जैसा बन्धन होता है वैसा ही बन्धन कर्म न करने में आलस्य, प्रमाद आदि से होता है। क्योंकि आलस्य प्रमाद भी एक भोग होता है जो तमोगुण के अन्तर्गत आता है।

गीता में बताया है कि (१) कर्म करने में ही तेरा अधिकार है (२) फल में कभी तेरा अधिकार नहीं है। (३) तू कर्मफल का हेतु मत बन (४) कर्म न करने में भी तेरी आसक्ति न हो।

तात्पर्य यह हुआ कि अकर्मण्यता में रुचि होने से प्रमाद आलस्य आदि 'तामसी वृति' के साथ तेरा सम्बन्ध हो जायेगा। कर्म और कर्मफल के साथ सम्बन्ध जोड़ने से 'राजसी वृति' के साथ तेरा सम्बन्ध हो जायेगा। प्रमाद आलस्य, कर्म, कर्मफल आदि का सम्बन्ध न होने पर जो विवेकजन्य सुख मिलता है उनके साथ सम्बन्ध जोडने पर 'सात्विक वृति' के साथ सम्बन्ध। हो जायेगा। इनके साथ सम्बन्ध होना ही जन्म मरण है। अतः साधक कर्म, कर्मफल, और इनके त्याग का सुख इनमें से किसी के भी साथ सम्बन्ध न जोड़े इनमें राग या आसक्ति न करे कर्म करते हुए इनके साथ सम्बन्ध न रखना ही कर्मयोग कहलाता है।

सांसारिक पदार्थों को मूल्यवान समझने के कारण ही कर्मयोग (निष्काम कर्म) के पालन में कठिनाई होती है। हमें दूसरों से कुछ न चाह कर केवल दूसरों के हित के लिए कर्म करने हैं—इस बात को यदि स्वीकार कर लें तो आज ही कर्मयोग का पालन सुगम हो जाय।

विद्वान् पुरुषों से भी लोक संग्रह के लिये सब कर्म होते हैं। परन्तु ऐसा होते हुए भी "मैं लोक संग्रह कर रहा हूँ"— यह अभिमान नहीं रहता कारण यह है कि शरीर, मन, बुद्धि, विद्या, योग्यता आदि सब संसार के हैं और संसार से मिले हैं। संसार से मिली सामग्री को संसार की सेवा में लगा देना ही कर्मयोग है।

(साभार श्रीमदभगवद्गीता)

जहाँ गुरु है वहाँ शिव है। गुरु और शिव स्वरूप ही वह परमेश्वर है। भ्रमर कीट सिद्धान्त के अनुसार यह प्रसिद्ध है कि भृंगी नामक कीड़ा अन्य कीड़ों को पकड़कर जब अपने घर में बन्द कर देता है तो वे कीड़े भय के कारण निरन्तर उस भृंगी का ध्यान करते रहने में भृंगी जैसे ही बन जाते हैं। ठीक इसी प्रकार शिव स्वरूप गुरुदेव का ध्यान करने से साधक मुक्त हो जाते हैं। शिवलिंग का अभिषेक करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं इसी प्रकार गुरु का अभिषेक करने से तथा चरणामृत का पान करने से अनेक जन्मों के पाप धुल जाया करते हैं। गुरु में प्रेम रखना ही शिव से प्रेम करना है। गुरु के समीप रहना ही परम पवित्र वास है। अतः शिव की शरण लेनी चाहिये, गुरु की शरण लेनी चाहिये।

(रुद्रोपनिषद)

ओम

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

मानव शरीर में सात चक्र हैं। योगियों ने प्रत्येक चक्र की बीज ध्वनि को पकड़ा। यथा मूलाधार पर सुनाई देने वाली ध्वनि "लं" है। यह इस चक्र की बीज ध्वनि है। इसी प्रकार सातवें चक्र पर सुनाई देने वाली ध्वनि "**ओम्**" है। यह अन्तिम ध्वनि है। इसके पार कोई ध्वनि नहीं है। यही कारण है कि पवित्र शास्त्रों व धर्म ग्रन्थों को लिखने के बाद लिखते हैं—'ओम् शान्ति'। अर्थात् इसके पश्चात् शान्त हो गये। इसके बाद कुछ नहीं जाना जाता या इसके पश्चात् जानने को कुछ भी शेष नहीं रह जाता है।

ओम् शब्द नहीं है। यह मात्र ध्वनि है। शब्द का अर्थ होता है। ओम् का कोई अर्थ नहीं है। यह अर्थातीत है। शब्द जूठा होता है, क्योंकि एक ही शब्द को अनेक व्यक्ति बोलते हैं। सभी शब्द अपवित्र हैं परन्तु ओम् पवित्रतम ध्वनि है।

हमारी भाषा की मूल तीन ध्वनियाँ हैं अ, उ, म। हमारा सारा का सारा शब्दों का विस्तार इन तीन ध्वनियों का विस्तार है। अ, उ, म का कोई अर्थ नहीं है। 'अ' जब कोई शब्द बन जायेगा, तब उसका अर्थ हो जायेगा। योगियों ने इन तीन मूल ध्वनियों को पकड़ लिया और इन तीनों ध्वनियों को मिलाकर 'ओम' बना दिया।

'ओम' को लिखा जा सकता है और लिखने से शब्द बन जाता है और शब्द का कुछ अर्थ होता है। पर 'ओम' तो अर्थातीत है। इस समस्या के समाधान के लिए योगियों ने ओम का चित्र "ॐ" बनाया जिससे उसमें अक्षर अथवा शब्द का उपयोग न हो सके अथवा यह किसी भाषा के कोष में न आ सके, क्योंकि यह तो ध्वनि है और ध्वनि की कोई भाषा नहीं होती है। इस "ॐ" को यदि ध्यान से देखोगे तो यह पाओगे कि इसके भी तीन हिस्से हैं जो अ, उ, म के प्रतीक हैं।

इस आकृति (ॐ) की खोज एक वैज्ञानिक खोज है। इसी कारण 'ओम' एक सार्वभौमिक सत्य बन गया। बौद्धों ने भी इसका उपयोग किया। बौद्धों का प्रधान मंत्र **'ओम मणि पद्मे हुम'** है। जैनों ने भी इसका निःसंकोच होकर प्रयोग किया। जैनियों का गुरुमंत्र **'ओम् अरिहातानम्'** से प्रारम्भ होता है। गुरु नानक देव 'एक ओंकार सद्गुरु प्रसाद' कहते हैं।

भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी किसी न किसी रूप में इसका प्रचलन है। परन्तु अन्य देशों के साधकों ने इसे पूर्णरूप से नहीं जान पाया। यदि हम अरेबिक और लैटिन भाषा को पढ़ेंगे तो 'अ' तो अवश्य मिलेगा। जैसे 'अलिफ' और **A** (अ)। इसका कारण यह है कि 'अ' इतना व्यापक हिस्सा है कि इस 'अ' के उच्चारण से 'ओम' के पीछे का हिस्सा सुनाई नहीं देता है। 'ओम' की जब भीतर आवाज होती है तो 'अ' सबसे ज्यादा सरलता से पकड़ में आ जाता

है और आगे का हिस्सा दब जाता है, 'अ' से। इसलिए सब विदेशी साधकों ने केवल 'अ' को ही पकड़ पाया।

शब्द और उसके अर्थ हजारों वर्षों के बाद बिगड़ते–बिगड़ते अपने मूल स्वरूप को छोड़ देते हैं और फिर वे अपभ्रंश शब्द ही मूल शब्द बन जाते हैं। जैसे सिक्ख शब्द सिख शब्द बन गया। इसी प्रकार ओम (ॐ) का जो ऊपर का हिस्सा है वह इस्लाम तक पहुँच गया। इसी ऊपरी हिस्से को वे चाँद–सितारे के नाम से आदर करते हैं। यह चाँद–सितारा ॐ का टूटा हुआ ऊपर का हिस्सा है।

कुछ कैथोलिक शास्त्रों के अनुसार 'आमेन' शब्द ओम् का ही अपभ्रंश है। लगभग कैथोलिको की सभी प्रार्थनाओं के अन्त में ईश–अभिनन्दन हेतु 'आमेन' शब्द का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है। ऐसा भी बताया जाता है कि ईसा मसीह ने सन्त मोहन से कहा था कि मैं ही 'आमेन' हूँ। अन्यत्र आमेन का अर्थ पूर्ण सत्य के अर्थ में हुआ है। कैथोलिक पूजन विधि में लैटिन भाषा के अनेक शब्द उपयोग में आते रहे हैं, उन सबमें ओम का ही अप्रभ्रंशित रूप है। जैसे ओमनी पेशेन्ट (सर्वव्यापक) ओमनीपोटेन्ट (सर्व शक्तिमान)।

आजकल तो भारत के गिरजाघरों में प्रार्थनाओं में ॐ का प्रयोग आरम्भ हो गया है। उदाहरणार्थ सेन्ट मेरी कॉलेज कर्सियांग (दार्जिलिंग) के आराधना मन्दिर की प्रमुख वाचन–पीठिका पर ॐ अंकित किया गया है।

माण्डूक्योपनिषद में ओम के चार पाद बतलाए हैं–

प्रथम पाद में प्रथम मात्रा अकार

पहिले पाद वाकी अकार मात्रा में स्थूल जगत के सम्बन्ध से परमात्मा का सगुणरूप 'विराट' है। और स्थूल शरीर के सम्बन्ध से आत्मा का सगुण स्वरूप 'विश्व' है। इसकी प्रकृति 'अग्नि' है। क्योंकि अग्नि से ही स्थूल जगत और स्थूल शरीर जीवित रहते हैं।

इस पहिले पाद में ओम् अथवा गुरु–मंत्र का जाप अर्थों की भावना सहित वैखरी वाणी से करना चाहिए। यही अकार की उपासना है। इसमें स्थूल शरीर का अभिमान रहता है। इसलिए स्थूल शरीर के सम्बन्ध से आत्मा की संज्ञा 'विश्व' है जो उपासक है और स्थूलजगत के सम्बन्ध से परमात्मा की संज्ञा 'विराट' है जो उपास्य है। बाहर से बिलकुल बेसुध होकर पूरे तन्मयता से ओम का जाप करने की इस अवस्था को वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की भूमि समझना चाहिए।

स्थूल जगत और स्थूल शरीर की अकार जाग्रत अवस्था है। जाग्रत अवस्था में स्थूल जगत में स्थूल शरीर का व्यवहार चलता है, वह आत्मा की सन्निधिमात्र से है। यही आत्मा की विश्व सगुण रूप संज्ञा है।

रामावतार में श्री लक्ष्मण जी और कृष्णावतार में श्री संकर्षण (बलराम) जाग्रत अवस्था के प्रतीक हैं।

दूसरे पादवाली उकार मात्रा में सूक्ष्म जगत के सम्बन्ध से परमात्मा का सगुण रूप 'हिरण्यगर्भ' है। तथा सूक्ष्म शरीर के सम्बन्ध से आत्मा का सगुण स्वरूप 'तैजस' है। सूक्ष्म जगत और सूक्ष्म शरीर की प्रकृति वायु है; क्योंकि वायु ही सूक्ष्म जगत और सूक्ष्म शरीर को जीवित रख रहा है।

दूसरे पाद अकार–उकार वाले ओम की उपासना मानसिक जाप अर्थ की भावना करते हुए करना चाहिए। इसमें सूक्ष्म शरीर का अभिमान रहता है। तैजस उपासक और हिरण्यगर्भ उपास्य है। इसको विचारानुगत और आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की संज्ञा समझना चाहिए।

स्वप्नावस्था में सूक्ष्म जगत में सूक्ष्म शरीर का व्यवहार चलता है, वह भी आत्मा की सन्निधि से है।

रामावतार में शत्रुघ्न कृष्णावतार में प्रद्युम्न स्वप्नावस्था के प्रतीक हैं।

तीसरे पादवाली मकार मात्रा में कारण जगत के सम्बन्ध से परमात्मा का सगुण स्वरूप 'ईश्वर' है। तथा कारण शरीर के सम्बन्ध में आत्मा का सगुण स्वरूप 'प्राज्ञ' है। प्राज्ञ उपासक और ईश्वर उपास्य है।

कारण जगत और कारण शरीर की मुख्य प्रकृति 'आदित्य' है। आदित्य महत्तत्व अथवा सत्वमय चित्त का ही दूसरा नाम है।

जब मानसिक जाप अपनी परिपक्व अवस्था में सूक्ष्म होते–होते केवल ध्वनि मात्र रह जाय तब यह तीसरे पाद अ, ऊ, मकार वाले पूरे ओम् की उपासना है। इसमें कारण शरीर का अभिमान रहता है। इसको अस्मितानुगत या विवेक ख्याति की भूमि समझनी चाहिये।

सुषुप्ति अवस्था में अस्मितानुगत समाधि में जो अस्मिता का अनुभव होता है तथा चित की आत्मा से भिन्नता की प्रतीति होती है, वह भी आत्मा की सन्निधिमात्र से है।

रामावतार में भरत तथा कृष्णावतार में अनिरुद्ध सुषुप्तावस्था के प्रतीक है।

चौथे पाद मात्रा रहित विराम में कारण जगत और कारण शरीर से परे केवल शुद्ध परमात्मा तत्व है।

जब ध्वनि भी अति सूक्ष्मावस्था को प्राप्त होकर समाप्त हो जाय तब कारण शरीर से परे शुद्ध आत्मा की कारण जगत से परे शुद्ध परमात्मा के स्वरूप में अवस्थिति होती है। यह असम्प्रज्ञात समाधि है।

यह योगी की तुरीयावस्था है यहाँ पहुँचकर समस्त व्यवधान, उपाधियाँ तथा उपास्य उपासक का भेद समाप्त हो जाता है। यही सब रूपस्थिति है।

श्री राम तथा श्री कृष्ण तुरीयावस्था के प्रतीक है। सीता महारानी तथा राधा रानी आदि शक्तियों के रूप में तुरीयातीत अवस्था के प्रतीक ओम् के 'बिन्दु' के प्रतीक हैं। इसके पश्चात् ओम शांति, ओम् शांति अर्थात् इसके आगे कुछ नहीं।

❋ ❋ ❋

षट सम्पत्ति

रामेश्वर खण्डेलवाल
गंगापुर सिटी (राज०)

व्यक्ति जब किसी बड़े पद वाले अधिकारी से मिलने जाता है, तो वह खाली हाथ नहीं जाता बल्कि कुछ न कुछ भेंट लेकर जाता है। कुछ सौगात लेकर जाता है। क्योंकि अपने से ऊँचे व्यक्ति को खुश करने के लिए उसे अपना बनाने के लिए कुछ देना पड़ता है। बदले में हमें उस बड़े पद वाले का हमारे ऊपर हाथ रहता है हमारा सहारा बन जाता है।

इसी तरह यदि हमें श्री प्रभुजी से मिलने जाना है। उनको अपना बनाना है तो हमें भी कुछ भेंट देनी होगी। बिना कुछ दिए प्रभु दरबार में प्रवेश नहीं हो सकता। घबराऐं नहीं वहाँ कुछ धन–दौलत नहीं ले जानी है। जो हमें देना है वो तो हमारे अन्दर ही मौजूद है। वो सम्पत्ति है–

(१) शम (२) दम (३) उपरति (४) तितिक्षा (५) श्रद्धा (६) समाधान का धन

(१) **शम**–शम क्या है–मन का निग्रह–अपने अन्तःकरण को पाप की ओर न जाने देना ये मन ही हमको पाप के दलदल में ले जाता है, हमको जन्म–मरण के चक्कर में डालता रहता है। बीच योनियों में पटकता रहता है। लेकिन इसी मन को अगर हम परमात्मा में लगा दें। प्रभु के भजन ध्यान में लगा दें तो हमें मोक्ष भी दिला देता है। हमें बड़ी सावधानी से इस मन पर नजर रखनी है। अधर्म के मार्ग से हटाकर धर्म के मार्ग पर चलाना है। काम में नहीं राम में लगाना है। विषय वासनाओं के दलदल से निकाल कर परमपिता के चिन्तन में लगाना है। संसार का सारा खेल इसी मन के द्वारा होता है। जिसने अपने मन को जीत लिया उसने जगत को जीत लिया। **''जितं जगत केन ? मनोहियेन''**।

(२) **दम**–दम का अर्थ इन्द्रियों पर काबू रखना। हमारी जो पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं ये जब बाहर के विषयों की ओर जाती हैं तो पता नहीं क्या–क्या उपद्रव्य हो जाते हैं। हाथ है मारने–पीटने या बुरे काम पर ज्यादा उठता है। पैर हैं जो गन्दी जगह सिनेमाघर या मयखाने की ओर जाते हैं। आँखें हैं जो सुन्दरता देखना ज्यादा पसन्द करती हैं कहने का तात्पर्य है कि ये इन्द्रियाँ भी जब संसार के विषय भोगों में भाग लेना पसन्द करती है तो समझो हम अधर्म के रास्ते चल रहे हैं। जिसका अन्त पतन है और परिणाम में निम्न कोटि की योनियों में जाना है। अगर हम इन इन्द्रियों को पाप से हटाकर पुण्य मार्ग की ओर लगा दें तो हमें परमात्मा का सामीप्य मिल सकता है। अपने हाथों से दुखियों की सेवा करें, किसी गिरे हुए को उठायें। हमारे पैर किसी शुभकार्य के लिये उठें। हम हमारी इन्द्रियों को बुरे कामों की ओर जाने से रोकें और अच्छे कर्मों में लगायें।

(३) **उपरति**—अपने धर्म के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करना। दुष्ट कर्म करने वालों से दूर रहना। दुराचारियों, पाप कर्म करने वालों से यदि दूर ना रहेंगे तब तक आत्म तत्त्व की ओर जाना कठिन है कुसंग को छोड़ कर सत्संग की ओर जाना है, ऐसे माहौल से दूर रहना है जिससे पतन की ओर ना जाना पड़े। पाप और पुण्य का रास्ता चुनना हमारे हाथ है। नीच योनियों में अगर भटकना है या जन्म मरण के चक्कर से छुटकारा पाना है ये हमारे हाथ है। जगत को अपने मन में बसायेंगे तो जगदीश हमसे दूर रहेंगे। क्योंकि **''प्रेम गली अति सांकरी, जामे दो ना समाय''**। अब ये हमारे हाथ है कि हमको दोनों में से किसको चुनना है।

(४) **तितिक्षा**—तितिक्षा एक कठोर तप है। इस तपस्या में हम पास हो गये तो परमात्मा हमारे अन्दर है। द्वंद्व सहना, गर्मी सर्दी सहना हर तरह का शारीरिक परिश्रम करना, ये शरीर की तितिक्षा है। मान, अपमान सहना कठोर वचन या निन्दा सुनना ये मानसिक तितिक्षा है। सच्चा साधक वह है जो न निन्दा की परवाह करता है न मान अपमान की न हानि–लाभ की। बल्कि दोषारोपण करने वालों का अपमान करने वालों को धन्यवाद करता है। और अपने अन्दर होने वाली त्रुटियों को दूर करता है। त्रुटि नहीं है दोषारोपण झूँठा है तो भी प्रसन्नता से सहन करता हुआ परमात्मा से यही प्रार्थना करता है कि भगवान इनको सद्बुद्धि दे।

यह तितिक्षा अनमोल गुण है कि कितने ही साधक इसी के बल पर भी परमात्मा के आशीर्वाद के पात्र बन गये। साधक को निन्दा से मान–अपमान से विचलित नहीं होना चाहिए। बल्कि प्रभु का प्रसाद मान कर ग्रहण करना चाहिए और प्रभु को धन्यवाद देना चाहिए। जिस साधक में यह गुण नहीं है वो प्रभु कृपा के पात्र नहीं है।

(५) **वेद**—वेद का आदेश है, श्रद्धा से किया हुआ काम सफल होता है।

श्रद्धा देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धा हृदय याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसुत।।

श्रद्धा कहते हैं अटल विश्वास को। श्रद्धा की नैया के बिना साधन मार्ग की नदिया पार नहीं होती। हमें गुरुदेव भगवान के वचनों पर पूरी श्रद्धा होना जरूरी है। मन शंका, तर्क–वितर्क करना इस मार्ग में बाधक है इनका हमारे अन्दर स्थान नहीं है होना चाहिए। श्रद्धा के बल पर ही आगे बढ़ना है और अपनी मंजिल पर पहुँचना। शंका करने वाला साधक बीच में ही भटकता रहता है और मंजिल से बहुत दूर रहता है। कहते है श्रद्धा और भावना के बल पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है। श्रद्धा का भाव है गुरुदेव भगवान के वचनों पर अटल विश्वास है, सत्य पर विश्वास है और भावना का भाव है उस साधक को अपनी मंजिल पाना बहुत आसान है।

जिस वस्तु में जैसा गुण है उसमें उसी गुण के अनुसार भावना करना। यदि हमने जड़ में चेतना की भावना कर ली तो जड़ प्रलय काल तक भी चेतन नहीं हो सकता। काग में यदि हंस की भावना कर ली तो काग हंस नहीं बन सकता। जैसा गुण हो वैसी ही भावना करे। इसलिए

हमें हमारे अन्दर अटूट श्रद्धा और अटल विश्वास बनाये रखना। अगर हमें सद्‌गुरुदेव भगवान में श्रद्धा नहीं है, उनके वचनों में अटल विश्वास नहीं है तो हमारी नैया कभी भवसागर से पार नहीं होगी।

(६) **समाधान**—कोई भी शंका जब तक बनी रहती है जब तक सारे संशय दूर नहीं हो जाते। संशय जब मिट जाते हैं तब कोई शंका शेष नहीं रहती। हमारा मन भी तभी एकाग्र होगा जब मन में कोई शंका नहीं रहती। हमारे सारे संशय दूर हो जाएँ तब ही हम ध्यानी साधना सफल कर सकते हैं। गुरुदेव भगवान के वचनों में हमें शंका पैदा हो गयी तो हम कभी अपनी साधना सफल नहीं कर सकते जब इसका समाधान हो जाता है तब हमारी साधना सफल होती जाती है। बार—बार संशय करते रहना और शंकाओं के सागर में गोते खाते रहना चित्त को एकाग्र नहीं होने देते हैं तो इनको दूर करने का नाम ही समाधान है।

ये षट सम्पत्ति जब तक साधक के पास नहीं है साधक अपनी मंजिल नहीं पा सकता। ये सम्पत्ति हमको हमारे पास रखनी है। तभी हम परम प्रभु के कृपा पात्र बालक बन सकते हैं।

❋ ❋ ❋

प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः
सम्यग्ज्ञानहुताशनेन विलयः प्राक्संचितागामिनाम्।
ब्रह्मात्मैक्यमवेक्ष्य तन्मयतया ये सर्वदा संस्थिता—
स्तेषां तत्त्रितयं न हि क्वचिदापि ब्रह्मैव ते निर्गुणम्।

विद्वान का प्रारब्ध—कर्म अवश्य ही बलवान होता है। उसका क्षय भोगने से ही हो सकता है। उसके अतिरिक्त पूर्व संचित और आगामी कर्मों का तो तत्वज्ञानरूप अग्नि से क्षय हो जाता है। किन्तु जो ब्रह्म और आत्मा की एकता को जानकर सदा उसी भाव में स्थित रहते हैं उनकी दृष्टि में तो वे (प्रारब्ध, संचित और आगामी) तीनों प्रकार के ही कर्म नहीं है, वे तो मानो साक्षात् निर्गुण ब्रह्म ही है।

महाप्रसाद की महिमा—२

लेखक—राजेश कुमार श्रीवास्तव

(पिछले अंक का शेष)

अपने प्राणों से जूझते भाई कुसेन्द्रपाल सिंह के सभी चिकित्सकों ने जब उनके जीवन को असुरक्षित घोषित कर दिया तो उनके परवारीजन अत्यन्त निराश हो गये। भाईजी के पूज्य पिताजी उन्हें श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई भेजना चाहते थे ताकि उनके पुत्र को वहाँ परम पूज्य योगिराज जी के चरण कमलों में पूर्ण आरोग्य एवं कल्याण की प्राप्ति हो सके। यद्यपि वे जानते थे कि कुसेन्द्र को इस कार्य हेतु राजी कर लेना बहुत कठिन कार्य है तथापि उन्होंने अपने पुत्र को आश्रम में पहुँचने के लिए कई बार प्रेरित किया। अन्ततः कुसेन्द्रजी को कहना ही पड़ा कि अब की बार आगरा से लौटते समय यदि शरीर में क्षमता रही तो अवश्य आश्रम के दर्शन करने जायेंगे। यह सुनकर उनके पिताजी को बड़ी प्रसन्नता हुई किन्तु अभी उनके मन में संशय बना हुआ था तब उनकी पुत्रवधु मुन्नीजी ने इस कार्य की जिम्मेदारी लेते हुए कहा कि आप चिन्ता न करें पिताजी ! मैं किसी भी प्रकार से इनको आश्रम के दर्शन कराकर ही लाऊँगी। इस प्रकार समझाकर अपने ससुरजी की बेचैनी को दूर किया। तब मन में अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी पुत्रवधु मुन्नी देवी जी से कहा—

बहू ! भगवान राम ने सीताजी को वन जाने से पूर्व आज्ञा दी थी कि तुम हमारे साथ वन न जाकर अपने सास–ससुर जी की सेवा यहीं रह कर करो इसी में तुम्हारा परम हित है। क्योंकि

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा।
सादर सास ससुर पद पूजा।।

हे राजकुमारी ! सुनो शास्त्रों में ऐसा कहा गया है कि आदर पूर्वक सास–ससुर की पूजा (सेवा) करने से बढ़कर स्त्री के लिए दूसरा कोई धर्म नहीं है।

भगवान श्री राम आगे कहते हैं यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन करते हुये अपने सास ससुर की सेवा उनकी आज्ञा में रहकर करोगी तो—

गुरु श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।

हे सुन्दरी ! गुरु और वेद के द्वारा सम्मत धर्म का पालन करने पर जो फल प्राप्त होता है वह तुमको बिना किसी क्लेश के अर्थात् उक्त धर्मों को आचरण में उतारने में प्राप्त अनेक कष्टों, कठिनाइयों व विघ्नों को सहन किये बिना ही प्राप्त हो जायेगा।

अभिप्राय यह है कि पति ही स्त्री का गुरु होता है अतः पति की आज्ञा का पालन करते हुये सास ससुर की सेवा से गुरु कृपा स्वतः ही प्राप्त ही उतरती जाती है। एक और सिद्धान्त की बात दृष्टिगोचर होती है। पतिव्रत धर्म के अन्तर्गत कहा जाता है।

एकइ धर्म एक व्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।

शरीर, मन, वचन से पति के चरणों में प्रेम करना ही स्त्री के लिए कवेल मात्र एक धर्म हैं और यह भी कहा गया है कि सास–ससुर की पूजा (सेवा) से बढ़कर स्त्री के लिए दूसरा धर्म नही है। इस प्रकार देखा जाए तो पतिव्रता स्त्री के लिए पति के चरणों में अटूट प्रेम तभी सार्थक है जब इसमें सास–ससुर की सेवा भी सम्मिलित हो किसी कारणवश यदि पति की सेवा का अवसर प्राप्त न हो रहा हो तो सास–ससुर की सेवा से स्त्री को वही फल प्राप्त होगा जो पति प्रेम के वशीभूत होकर उनकी सेवा करने से होता है।

तो पतिव्रता स्त्री को पति की प्रसन्नता में ही अपनी प्रसन्नता समझ कर पति को तन–मन से अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करना चाहिए ताकि उसका पति अपने कर्तव्य को ठीक से निभा सके।

किसी आज्ञा विशेष को स्त्री स्वीकार न करे तो पति को अथवा उसके घरवालों को आज्ञा पालन के लिए जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए क्योंकि फिर इसमें घर में कलह–अशान्ति व्याप्त होने का भय पैदा हो जाता है। घर के अन्दर निरन्तर रहने वाला कलह घर का नाश करके ही छोड़ता है। वैसे भी पति की आज्ञा का पालन करना पत्नी का धर्म हैं यदि वह पालन करती है तो इसमें उसकी बहुत भलाई है यदि नही करती है तो उसे हानि उठानी ही पड़ेगी। जबरदस्ती आज्ञापालन कराने का अथवा पालन न करने पर दण्ड देने का अधिकार हमारा नहीं होना चाहिए। बड़ों की शोभा छोटों के अपराध क्षमा करने में है।

जब सीताजी ने भगवान राम की आज्ञा न मानकर उनके साथ वन में जाने का ही हठ किया तो भगवान राम ने उन्हें वन में अपने साथ ले जाने की आज्ञा तो दे दी किन्तु सीता जी सचेत भी किया कहने लगे–

सहज सुह्रद गुरु स्वामी सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताई अघाइ उर अवसि होई हित हानि।।

सुनो राजकुमारी : स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी (पति) की शिक्षा (आज्ञा) को जो सिर चढ़ा कर नहीं मानता, वह ह्रदय में भरपेट पछताता है। और उसके हित की हानि अवश्य होती है।

सभी जानते हैं पति परमेश्वर भगवान राम की आज्ञा न मानने पर वन में चौदह वर्ष भगवान के चरण कमलों से दूर रहना पड़ा। माता सीता ने यह लीला कर स्त्रियों को पति की आज्ञा में रहने की शिक्षा दी है।

पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई जब श्री कुसेन्द्र जी व मुन्नी जी ने बिना किसी विरोध के उनकी कल्याणकारी सलाह को मान लिया। बस यहीं से श्री कुसेन्द्रजी के भाग्योदय का योग बनना शुरु हो गया। वेदों–पुराणों ने माता–पिता और गुरु की सेवा तथा उनकी आज्ञाओं का पालन करने का उपदेश भारतीय संस्कृति में निहित किया है।

शिवपुराण में आता है–

पित्रोश्च पूजनं कृत्वां प्रक्रान्ति च करोति यः।

अर्थात्–जो पुत्र माता–पिता की पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। सन्तान का प्रथम धर्म यही है कि वह अपनी सेवा से, अपने प्रत्येक कर्म से माता–पिता को सुख पहुँचाऐ। सन्त के स्वभाव वाले सरल–सन्तोषी, माता–पिता की आज्ञा तो सन्तान को कभी नहीं ठुकरानी चाहिए अर्थात उनके सरल हृदय को ठेस नहीं पहुँचानी चाहिए। सच्चे साधू जैसे माता–पिता अपनी सन्तान के कल्याणार्थ ही निर्मल भावना से आज्ञायें करते हैं। माता–पिता अपनी सन्तान को किसी अनुचित कार्य (अधर्म) में लगा रहे हों ऐसी दशा में ही सन्तान द्वारा उनकी अनुचित आज्ञाओं का विरोध करना उचित होता है। पढ़ें एक आत्मज्ञानी महान् सन्त की वाणी–माता–पिता में यदि कोई कमी दिखलाई देती है तो उस कमी को अपने स्वभाव में मत लाने दो। और उनके प्रति अपनी श्रद्धा और प्रेम को भी कम मत होने दो। तुम्हारे माता–पिता का आशीर्वाद तुम्हारे ऊपर बरसेगा। उनकी ही कृपा से गुरुदेव की प्राप्ति होती है। उनकी की कृपा से ब्रह्मज्ञान और योग में सफलता मिलती है।

श्री कुसेन्द्रजी ने अपने सरल सन्त जैसे पिताजी की आज्ञा स्वीकार करके उनके हृदय को महान सुख पहुँचा दिया था। पिताजी के सच्चे हृदय की यह प्रसन्नता ही कुसेन्द्र के लिए 'आशीर्वाद' बन गई।

धर्म ही मनुष्यों का सनातन सुहृदय है। जब भी मनुष्य के जीवन में अधार्मिकता व्याप्त होती है तभी वह भारी विपदाओं–आपदाओं का शिकार होता है। अतः धर्म के विपरीत आचरण ही जीवन नाश का कारण होता है। तमाम बच्चे शुरू से ही अड़ियल स्वभाव के मनमुखी होते हैं। बात–बात पर अपनी चलाते हैं। थोड़ा–सा पढ़ लिख जाने पर सीधे–सादे माता–पिता की बात न मानकर, तनाव और क्रोध में भरकर उल्टा उन्हीं को उपदेश करते हैं। ऐसी जड़ सन्तान का जीवन कोरा पृष्ठ ही रह जाता है। ये लोग धन, यश व आरोग्य से हमेशा के लिए वंचित हो जाते हैं। बाद में पश्चाताप के सिवा कुछ भी नहीं रह जाता।

डा० को दिखाने की तारीख आ गई थी। डा० ने कह दिया था अभी दिखाते रहना। श्रीमति मुन्नी जी ने सारी तैयारी कर ली दूसरे दिन अपने पति (श्री कुसेन्दपाल जी) के पास अपनी बीमारी के क्लिष्ट संस्कारों के साथ पिताजी का आशीर्वाद भी था। डा० को दिखाकर लौटते समय श्री कुसेन्द्र जी अपनी पत्नी से बोले–

–पिताजी ने कहा था सन्तों की दुआ लग जाती है। तेरा क्या विचार है ? चलेगी वहाँ ?

–और क्या, डाक्टरों ने तो सारा घर खाली कर दिया हमारा। क्या पता पिताजी की बात ठीक ही निकले। तुम बताओ वहाँ तक चल सकोगे ? यदि कमजोरी अधिक न सता रही हो तो मेरी राय तो यही है तुम एक बार वहाँ जरूर दिखा लो।

–हाँ, मैंने पिताजी से कह दी है इसलिए वहाँ एक बार तो अवश्य ही दर्शन कर आयें। पिताजी की भी इच्छा पूरी हो जायेगी नहीं तो वे दुःखी होंगे।

दोनों रास्ते में विचार–विमर्श करके एत्मादपुर आ गये वहाँ से सवांई आश्रम के लिए रिक्शा कर लिया। आश्रम में पहुँचते ही उनको शान्ति और सन्तोष का परम सुख महसूस हुआ। महिला

निवास के सामने ही कुछ महिलाओं के साथ एक परम् तेजस्विनी देवी को देखा। श्रीमति मुन्नीजी, अपने पति को सहारा देती हुई धीरे-धीरे उनके समीप पहुँच गयीं।

दिव्य छटा से ओत-प्रोत ये परम् पूज्यनीया उमा बहिनजी (शक्ति माँ) ही थीं। श्रीमति मुन्नी जी ने देखा लोग उन्हें 'दीदी' कह कर पुकार रहे थे। दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। दीदी ने तुरन्त पूछा-

-अच्छा ! कहाँ से आई है ?

-हम एटा के रहने वाले हैं, अभी आगरा से आ रहे हैं।

श्रीमती मुन्नी जी ने सहमते हुए उत्तर दिया। झिझक भी लग रही थी। उनके लिए एक दम नया वातावरण था। पहली बार सिद्धयोगियों के आश्रम को देखा। अब तक देवालय-शिवालय देखे थे। दीदी ने पुनः पूछा-

-क्यों ? आगरा से क्यों ? ये तेरा पति है ? क्या हुआ है इसको ? अरे ! ये तो बहुत बीमार है।

-हाँ दीदी, ये मेरे पति हैं। बहुत दिनों से बीमार हैं।

इतना कहने के साथ ही मुन्नी का दुःख फूट पड़ा असहाय किन्तु बहादुर मुन्नी जी के आँसू अनायास ही टपकने लगे। उनकी सिसकियाँ सुनते ही पूज्य दीदी ने उन्हें अपने कण्ठ से लगा लिया और पुचकारते हुये अनेक प्रकार से ढाढ़स बंधाया। वे प्यार से बोली-

-तू बहुत अच्छी जगह आ गई है, यहाँ रोने का कोई काम नहीं है। पहले मुझे बता कि तेरी परेशानी क्या है।

मुन्नी जी ने अपनी सम्पूर्ण व्यथा पूज्यनीया 'दीदी' को सुना दी। 'दीदी' को उस पर बड़ी करुणा आई। कहने लगीं-

-तू चिन्ता मत कर। अभी महाराज जी (परम पूज्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहनजी महाराज) अपने कक्ष से बाहर निकलने ही वाले हैं। यहीं आकर बैठेंगे। फिर रात्रि शयन के समय तक यहीं अपनी कुर्सी पर विराजमान रहेंगे। मैं महाराजजी से कह दूँगी। तेरा पति बिल्कुल ठीक हो जायेगा। दुनियां के सबसे बड़े डाक्टर ये ही हैं। और दुनिया में, मरीजों के लिए इस आश्रम से अच्छा कोई हॉस्पीटल नहीं है। किन्तु सिर्फ श्री महाप्रभुजी के संस्कारी बच्चों के लिए ही। इस संसार भर में जगह-जगह उनके संस्कारी बच्चे भरे पड़े हैं समय आने पर उनकी कृपा से वे स्वयं ही यहाँ आ जाते हैं और लाभ उठाते हैं। जिस मरीज की भर्ती महाराज जी यहाँ अपनी इच्छा से कर लेते हैं, यदि वह महाराज जी की आज्ञाओं का उल्लंघन न करें और अटूट श्रद्धा और विश्वास बनाये रखें तो वे उसे पूर्ण स्वस्थ करके ही घर भेजते हैं।

-किन्तु दीदी ! इनकी तो आँतें बिल्कुल खराब हो चुकी हैं। अब कैसे होंगे ?

-तू भोली है अभी कुछ नहीं समझती है। महाराज जी हर असाध्य रोग के परिपूर्ण विशेषज्ञ हैं।

अच्छा ! तूने अभी गुफा के दर्शन तो किये नहीं होंगे ?

—अभी नहीं किये, दीदी।

—तो जा पहले हाथ–मुँह धोकर गुफा के दर्शन कर ले और श्रीमहाप्रभुजी के पावन चरण कमलों में प्रार्थना कर।

थोड़ी देर पश्चात् ही वे हमारे परमधन करुणा के धाम, दीन–दुखियों, असहायों–निर्बलों के एक मात्र सहारे हमारे प्यारे श्री सद्‌गुरुदेव जी अपने स्थान पर आकर विराजमान हो गये थे। श्रीमति मुन्नीजी श्री सिद्धगुफा के दर्शन करके अपने पति को लेकर पहले से ही पूज्य गुरुदेवजी की प्रतिक्षा में बैठी थी। सभी ने गुरुदेव जी को प्रणाम किया। उन दोनों ने भी उनके पवित्र चरण कमलों में अपना मस्तक झुका दिया। पूज्य गुरुदेवजी ने दोनों के लिए 'आशीष' कहते हुये उनकी पीठ को मनो विनोद के साथ थपथपा दिया। पूज्यनीय बहिनजी ने सर्वप्रथम गुरुदेवजी को उनकी दारुण व्यथा सुना दी। पूज्य गुरुदेवजी ने करुणा की दृष्टि से पहले मरीज की ओर निहारा फिर मुन्नीजी की ओर मधुर दृष्टिपात करते हुए स्नेहपूर्ण वचनों के साथ वे परम् करुणार्णव अपने मुखारविन्द से बोले—

—मुनियाँ ! यदि हम तेरे पति को कुछ दिन आश्रम में रोक लें तो तू रुक जायेगी ?

—जी महाराजजी, आपकी आज्ञा है तो मैं इनको अवश्य यहाँ लेकर रुक जाऊँगी।

पूज्य गुरुदेवजी पूर्णदया दृष्टि के साथ बोले—

—हाँ, मुनियाँ ! हम चाहते हैं तुम कुछ दिन अपने पति को आश्रम में ही रखो। श्री प्रभुजी अवश्य कृपा करेंगे। हम कुछ हल्के आसन बता देंगे ब्रह्मचारी हमारे बच्चे, तुम्हारे पति को करा दिया करेंगे।

रात्रि को आरती पूजन के पश्चात् जब भोजन की घण्टी लगी तो पूज्य गुरुदेव जी ने सभी को भोजन करने की आज्ञा दी। सारे लोग भोजन करने चले गये किन्तु वे दोनों गुरुदेव जी के चरण–कमलों में ही बैठे रहे। जब उनकी करुण दृष्टि उन दोनों पर पड़ी तो उन्होंने श्रीमति मुन्नी जी से पूछा—

—क्या बात है, मुनियाँ ! भोजन का परहेज है लल्ला के लिए क्या ?

—जी, महाराज जी ये कुछ भी नहीं खा पाते। अन्न तो बिल्कुल ही नहीं खा सकते। डाक्टर ने केवल केला दही के साथ बताया है काफी दिनों से बस यही खा रहे हैं

श्री कुसेन्द्रपाल सिंह जी ने स्वयं हाथ जोड़ते हुए पूज्य गुरुदेव जी से निवेदन किया। महाराज जी ! भोजन से मुझे बहुत कष्ट होता है आप रहने ही दें, बड़ी कृपा होगी।

श्री कुसेन्द्रजी की बात सुनकर पूज्य गुरुदेव जी को बड़ी दया आई बोले—

—भोजन नहीं करोगे तो जीवित कैसे रह सकोगे ? थोड़ा सा भोजन अवश्य करो।

—महाराज जी, हम अपना भोजन अपने साथ लाये हैं उसी को खा लेंगे।

पूज्य गुरुदेव भगवान ने बड़ी सरलता से समझाते हुये कहा—

—नहीं लला ! श्री प्रभु जी का यह 'महाप्रसाद' है। बड़े पुण्य कर्मों से संस्कारी बच्चों को

ही यह प्राप्त होता है। इसके लिए मना नहीं करते। जो भोजन तुम अपने साथ लाये हो उसे कुत्ते को खिला दो। और यहीं का ताजी प्रसाद ग्रहण करो। श्री प्रभु जी का यह 'महाप्रसाद' मरीजों के लिए रामबाण औषधि जैसा प्रभाव लेकर आता है। भोजन तो हम तुम्हें अवश्य ही खिलायेंगे। विशेष रुप से हमने तुम्हें इसीलिए रोका है। भण्डारे का भोजन उनके पावन चरण–कमलों का ध्यान करते हुये श्रद्धा और विश्वास के साथ ग्रहण करोगे तो यह 'महाप्रसाद' ही तुम्हारे समस्त रोगों का नाश कर देगा।

श्री कुसेन्द्रजी बोले–ठीक है महाराज जी आपकी आज्ञा है तो हम अवश्य भोजन कर लेंगे।

–अच्छा लला।

पूज्य गुरुदेवजी ने तुरन्त ब्रह० श्री बाजपेयी जी को बुलवाया और उनसे कहा–लला, इनको अपने साथ आराम पूर्वक ले जाओ और अपने सामने ही भोजन करवाना। ब्रह० जी उन्हें अपने साथ भोजनालय में ले आये। बहुत दिनों के बाद आज कुसेन्द्रजी पूज्य गुरुदेव जी की महान कृपा से 'महाप्रसाद' में मिली रोटियाँ खा रहे थे। अभी दो ही रोटी धीरे–धीरे खा सके थे कि ब्रह० जी ने उन्हें रोक दिया–बस, आज इतना ही ठीक है, अब मत भोजन करो। तुम कहीं भोजन ज्यादा न कर लो इसीलिए पूज्य श्री ने हमें यहाँ तुम्हारे पास खड़े रहने की आज्ञा दी है। वे उन्हें अपने साथ ही वापस ले आये। पूज्य श्री ने कुछ आसन निर्दिष्ट किये जिन्हें सोने से पूर्वक करना था। ब्रह० जी ने वे आसन करवाये।

चार दिनों में ही बहुत लाभ नजर आने लगा। वे दोनों वक्त प्रभुकृपा से 'महाप्रसाद' का उचित मात्रा में नियमित सेवन कर रहे थे। श्रीमति मुन्नीजी ने अपने पिताजी (श्वसुर जी) को कुशलता का पत्र लिख दिया था, आश्रम में ठहरने की सूचना दे दी थी।

श्री कुसेन्द्रपाल जी अपने को पूर्ण स्वस्थ समझ कर अब घर जाने की जिद्द करने लगे। काफी समय बाद शरीर को आराम मिला था। ठीक होते ही उन्हें अपने कारोबार (दुकान) की चिन्ता होने लगी। पूज्य गुरुदेव जी की इच्छा के विरुद्ध श्री कुसेन्द्र जी अपनी पत्नी के साथ घर लौट आये। घर पर पिताजी बोले– बेटा जब तुम्हें लाभ हो रहा था तो पूरी तरह स्वस्थ होकर ही आते।

गुरु अवज्ञा कभी अच्छी नहीं होती। दो–चार दिन के बाद श्री कुसेन्द्रजी की हालत पहले जैसी ही हो गई। रोटी फिर छूट गयी। अपनी मूर्खता पर उन्हें बड़ी लज्जा आ रही थी, पश्चाताप भी बहुत हो रहा था। पिताजी बोले–संत बड़े उदार होते हैं एक बार फिर चले जाओ वे अवश्य क्षमा कर देंगे।

उन्होंने अपनी धर्मपत्नी जी से पुनः आश्रम चलने के लिए कहा तो मुन्नी जी को बड़ी खुशी हुई। वे ट्रेक्टर में बैठकर चल दिये। गाँव के ऊसर क्षेत्र में उनके पिताजी ध्यान करने के लिए बैठ जाते थे। वहीं ट्रेक्टर रुकवा लिया, पिताजी की आज्ञा और आशीर्वाद लेकर पुनः आश्रम चल दिये।

उन्हें देखकर पूज्य गुरुदेव जी बहुत खुश हुये। कहने लगे– लला ! तुमने बहुत अच्छा किया लौट आये, अब मन लगा कर रहना।

इस बार वे दोनों २०–२२ दिन आश्रम में रहे। पूज्य गुरुदेव जी की पीयूषवाणी को श्रद्धा से श्रवण करते। शाम को भजनों में सम्मिलित होते और दोनों वक्त प्रेमपूर्वक श्रीमहाप्रभुजी का सामूहिक आरती पूजन करते। दिन में लोगों से व्यर्थ की बातों में समय न गवांकर, आश्रम का साहित्य पढ़ते और गुरुदेव के चरणों में बैठते और उन्हें प्रणाम करते। आशीर्वाद पाते। नियमित आसन करते और परम परमेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 'महाप्रसाद' आनन्दमग्न होकर श्रद्धा और विश्वास के साथ ग्रहण करते। पूज्य गुरुदेवजी दोनों के भक्तिभाव और श्रद्धा से बहुत खुश हुए। उनका शुभ आशीर्वाद फलित हुआ। वे पूर्णतः स्वस्थ होकर पूज्य श्री की आज्ञा लेकर घर लौट आये। इस प्रकार श्री कुसेन्द्रपाल जी को पूज्य गुरुदेव जी की परम् करुणा से नवजीवन प्राप्त हो सका। उन्होंने घर जाकर पिताजी व अन्य परिवारीजनों के सम्मुख पूज्य श्री का गुणानुवाद किया और आश्रम की भूरि–भूरि प्रशंसा की। वे पिताजी से बोले–पिताजी, सिद्धगुफा के महाराज जी पूर्ण सामर्थ्यवान सच्चे योगीराज हैं। आपके योग्य स्थान है। आप वहाँ जाकर उनसे गुरुदीक्षा ले लो। बेटे का कहना मान कर वे आश्रम आये। करुणानिधान, पतितपावन पूज्य श्री का दर्शन किया। उन्होंने श्री कुसेन्द जी के विषय में बतला कर अपना परिचय दिया। पूज्य गुरुदेव जी ने बड़े स्नेहपूर्वक उनसे बातें की। प्रथम निवेदन में ही गुरुदीक्षा प्रदान करके परम् प्रभु जी ने उन्हें निहाल कर दिया। इसके बाद उन्हें गुरुदेव जी पुनः नहीं प्राप्त हो सके इसका उन्हें दुःख है। सन् १९९० में पूज्य श्री का लीलावसान हो गया था। किन्तु वे बड़ी तल्लीनता से अपनी साधनाओं में प्रवृत रहते हैं अल्प भाषण और एकान्त निवास उनके स्वाभाविक गुण हैं।

भागवत में आता है–

गुरुर्न स स्यात्स्वजनों न स स्यात।

पिता न स स्याज्जननी नसा स्यात।

देवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या–

न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युभ।

अर्थात् जो अपने प्रिय सम्बन्धी को भगवद्‌भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु की फाँसी से नहीं छुड़ाता वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।

प्रस्तुत घटना चरित्र में पिता ने पुत्र को गुरु चरणों तक पहुँचाकर आदर्श पिता होने का सर्वश्रेष्ठ धर्म कमा कर जीवन धन्य किया। और पुत्र (श्री कुसेन्द्रपाल जी) ने पिताजी को गुरुचरणों में जोड़कर भवबन्धन से निर्विघ्न मुक्त होने का अनुपम सुयोग प्राप्त कराया। दोनों का परस्पर उपकार अनुकरणीय है।

❋ ❋ ❋

पद्मासन

वामोरुपरि दक्षिण हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा।
वक्षोरुपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढम्।।
अंङ्गष्ठे ह्रदये निधाय चिबुकं नासोअमवलोकयेत्।
एतद् व्याधि विनाश-कारणपरं पद्मासनं चोच्यते।।

विधि—सीधे सममाव से बैठकर अपने दाहिने पैर को बाईं जंघा पर दृढ़ता से रखें। इसी प्रकार बायें पैर को दाहिनी जंघा पर जमाकर रखें, इसके बाद अपने दोनों हाथों को पीठ पीछे से घुमाकर दाहिने हाथ से बाईं जंघा पर रखे हुए दाहिने पैर के अंगूठे को व दाहिने हाथ से बायीं जंघा पर रखे हुए बायें पैर के अंगूठे को दृढ़ता से पकड़ें, ठोड़ी छाती में लगाकर (अर्थात् जालन्धर बन्ध लगाकर) नासिका के अग्रभाग को देख। इसी का नाम पद्मासन है। यह सभी व्याधियों का नाश करता है।

समय—आधे मिनट से शनैः शनैः दो मिनट तक और अभ्यास बढ़ जाने पर परमार्थाभिलाषी व्यक्ति कई २ घण्टों का अभ्यास बढ़ाते रहते है।

लाभ—प्राणायाम के अभ्यासियों के लिए परम श्रेयस्कर है। कुण्डलनी में गति देता है। मन की एकाग्रता एक भ्रू मध्य ध्यान के लिए परमोत्कृष्ट है। सभी व्याधियों को हटा कर आरोग्य प्रदान करता है।

मुक्त पद्मासन

इसमें केवल इतना अन्तर है कि (पश्चिमेन विधिना) वाली बात को छोड़कर अपने दोनों हाथों को करतल कर पृष्ठ की रीति से मुद्रा बनाकर अपने दोनों जंघाओं पर रखे हुए दोनों पैरों की एड़ियों के ऊपर अपने दोनों हाथों के करतलों को जमाकर रख लेना चाहिए। इसमें पीठ की ओर से घुमाकर उरु स्थलों में रखे पैरों के अंगूठे नहीं पकड़े जाते। अतः इसका नाम मुक्त पद्मासन है।

करने की विधि व लाभ साधारणतः पूर्वोक्त ही है।

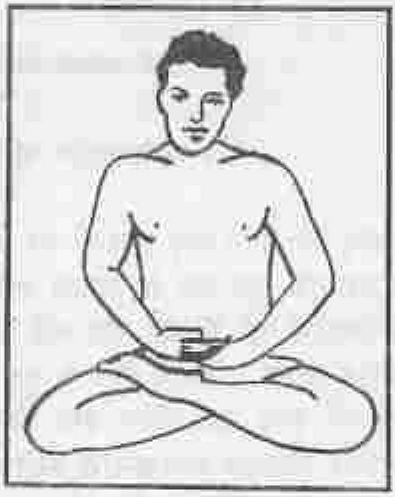

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्।'

ज्ञाता कदापि निज को नहीं जान सकता। हम सब कुछ देख पाते हैं, किन्तु अपने को देख नहीं पाते। वही आत्मा—जो ज्ञाता और सबका प्रभु है; जो प्रकृत वस्तु है—वह ही जगत् की समग्र–दृष्टि का कारण है; किन्तु उसके पक्ष में प्रतिविम्ब के अतिरिक्त अपने को देखना अथवा अपने को जानना असम्भव है। आप दर्पण के बिना अपना मुँह नहीं देख पाते। उसी प्रकार आत्मा भी प्रतिविम्बित हुए बिना अपना स्वरूप नहीं देख पाती। इसलिए यह समग्र ब्रह्माण्ड ही आत्मा का निज की उपलब्धि का यत्न–स्वरूप है। जीवद्रव्य (Protoplasm) में उसका प्रथम प्रतिविम्ब प्रकाशित होता है, उसके पश्चात् उद्भिद् पशु आदि उत्कृष्ट उत्कृष्टतर प्रतिविम्बग्राहक से सर्वोत्तम प्रतिविम्बग्राहक पूर्ण मानव में उसका प्रतिवम्ब प्रकाशित होता है। जैसे कोई मनुष्य अपना मुँह देखने की इच्छा करके एक क्षुद्र कीचड़ से युक्त जलाशय में देखने का प्रयत्न करके मुँह का एक ऊपर–ऊपर का आकार देख सका। उसके पश्चात् उसने कुछ अधिक निर्मल जल में कुछ अधिक उत्तम प्रतिविम्ब देखा, उसके पश्चात् उज्ज्वल धातु में उसकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ प्रतिविम्ब देखा। अन्त में एक दर्पण लेकर उसमें देखा—तब वह स्वतः ठीक जैसा है, बिल्कुल वैसा ही उसने अपने को प्रतिविम्बित देखा। अतएव विषय और विषयी उभयस्वरूप उसी पुरुष का सर्वश्रेष्ठ प्रतिविम्ब है—'पूर्ण मानव'। आप अब देख पायेंगे कि मानव स्वभाववश ही क्यों सब वस्तुओं की उपासना किया करता है तथा सभी देशों में पूर्णमानवगण क्यों स्वभावतः ईश्वर के रूप में पूजित होते हैं। आप कुछ भी कहिये, इनकी उपासना अवश्य ही करनी होगी। इसलिए लोग अवतारगणों की उपासना करते हैं। वे अनन्त आत्मा के सर्वश्रेष्ठ प्रकाशस्वरूप हैं। आप हम ईश्वर के सम्बन्ध में चाहे जो धारणा क्यों न करें, वे उसकी अपेक्षा उच्चतर हैं। एक पूर्ण मानव इन सब धारणाओं की अपेक्षा श्रेष्ठतर है।

—स्वामी विवेकानन्द

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
तत्त्वकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
[illegible] (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

(191)
श्री/सुश्री उमाशंकर भारद्वाज
B-65 बालाजी पुरम
शाहगंज अलबतिया रोड़
आगरा 282010

सु[illegible] त्वदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ। अभ्यासाद्रमते यत्र दुखान्त च निगच्छति।।
२[illegible] ग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।।

(गीता १८/३६-३७)

हे भरतश्रेष्ठ ! अब तीन प्रकार के सुख को भी तू मुझसे सुन। जिस सुख में साधक मनुष्य भजन, ध्यान और सेवादि के अभ्यास [illegible] करता है और जिससे दुःखों के अन्त को प्राप्त हो जाता है— जो ऐसा सुख है, वह आरम्भ[illegible] से यद्यपि [illegible] के तुल्य प्रतीत होता है, परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है, इसलिए वह परमात्म [illegible] बुद्धि के [illegible] से उत्पन्न होने वाला सुख सात्विक कहा गया है।

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। सम्पादक—आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा